पूंजीवादी विकास बनाम समाजवादी विकास

बुर्जआ वर्ग और उसके टुकड़खोर पूंजीवादी बुद्धिजीवी समाजवाद व कम्युनिज्म की विचारधारा पैदा होने के वक्त से ही उसे हर सम्भव तरीके से कोसने की कोशिश करते रहे हैं। 1970 के दशक का अन्त आते-आते जब समाजवादी क्रांतियों की पहली शृंखला समाप्त हो गयी, तब इनके दुष्प्रचार में काफी तेजी आ गयी। इन्होंने घोषित कर दिया कि समाजवाद एक असफल हो चुका विचार व व्यवस्था है।

बुर्जुआ वर्ग के बुद्धिजीवियों के समाजवाद के सम्बन्ध में कुतर्कों का सार कुछ इस प्रकार है-समाजवाद मानव प्रकृति के खिलाफ सोच है यह एक कृत्रिम व्यवस्था है इसलिए अगर इसे कृत्रिम तौर तरीकों से कायम भी कर लिया जाय तो भी यह मानव प्रकृति के विरोध में होने के चलते टिक नहीं सकती जैसा कि रूस-चीन के समाजों में हुआ। यह मानव प्रकृति के खिलाफ इसलिए है कि यह असमान क्षमताओं वाले मनुष्यों को जबरन समान करना चाहती है जो कि असम्भव है। पूंजीवाद मनुष्यों की असमान क्षमताओं-गुणों को मान्यता देता है। उसकी निजी सम्पत्ति की व्यवस्था में मनुष्य अपनी क्षमता-गुण के अनुरूप कम या ज्यादा निजी सम्पत्ति के मालिक बनते हैं। इसलिए निजी सम्पत्ति की स्वतंत्रता वाली पूंजीवादी व्यवस्था ही सबसे अधिक जनवादी व तार्किक व्यवस्था है। यह मानव प्रकृति के अनुकूल भी है।

'मानव प्रकृति' व 'बुर्जुआ जनवाद' के ये पैरोकार जब पूंजीवादी व्यवस्था को प्रस्तुत करते हैं तो वे आज की सार्विक मताधिकार पर आधारित बुर्जुआ संसदीय प्रणाली को ही विज्ञापन के बतौर सामने रखते हैं। वे पूंजीवाद के पिछले 500 वर्षों के विकास के दौरान किये गये काले कारनामों पर अक्सर या तो चुप्पी साध लेते हैं या फिर उन्हें एक अपवाद के बतौर या कुछ व्यक्तियों की सनक मान लेते हैं। मजे की बात यह है कि पूंजीवाद के जन्म के समय से लेकर वर्तमान समय तक ऐसे बदनुमा तथ्यों की भरमार है जिन्हें 'मानव प्रकृति' के अनुकूल कहने की जुर्रत बुर्जुआ बुद्धिजीवी भी नहीं कर सकते। ये बदनुमा तथ्य पूंजीवाद में अपवाद नहीं बल्कि उसकी आम गति का परिणाम हैं। ये पूंजीवाद के चेहरे पर कभी न पोछे जा सकने वाले कलंक की तरह हैं क्योंकि पूंजीवाद के विकास के साथ इस कलंक की परत लगातार मोटी होती जा रही है।

ऐसे में बुर्जुआ बुद्धिजीवियों की बकवासों का जवाब देने के लिए जरूरी है कि पूंजीवादी विकास के अनिवार्य हिस्से के बतौर लगातार पैदा होने वाले इन बदनुमा दागों का एक जायजा लिया जाय। इनकी मदद से साबित किया जाय कि मानव प्रकृति इतनी बदनुमा नहीं हो सकती। इसके साथ ही पिछली सदी में कायम हुए रूस-चीन के समाजवादी समाजों ने कैसे अपने विकास की प्रक्रिया में इन बदनुमा दागों को धो डाला, इसका भी जायजा लिया जाय। इस सब की मदद से यह साबित किया जाय कि क्यों समाजवादी व्यवस्था न केवल पूंजीवादी व्यवस्था से हर मामले में श्रेष्ठ व बेहतर व्यवस्था है बल्कि वह मानव प्रकृति व इतिहास की गति के अनुकूल भी है। इस लेख में इन्हीं बातों का प्रयास किया जायेगा।

A. पूंजीवादी विकास

पूंजीवादी व्यवस्था ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में सामन्ती व्यवस्था से आगे बढ़ी हुई व्यवस्था है। सामंती व्यवस्था के भीतर पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों का पनपना, पूंजीपति वर्ग का सामंती व्यवस्था से संघर्ष कर पूंजीवादी व्यवस्था स्थापित करना एक आगे बढ़ा हुआ कदम था। सामंती व्यवस्था की तुलना में पूंजीवादी व्यवस्था उत्पादक शक्तियों का बहुत तेजी के साथ विकास करती है। उत्पादक शक्तियों को लगातार विकसित करते जाना पूंजीपति वर्ग के अस्तित्व की शर्त बन जाता है। पूंजीवादी उत्पादन के श्रम विभाजन के चलते उत्पादित माल के व्यक्तिगत श्रम की पैदावार होने का गुण क्रमशः खत्म होता जाता है और माल अब ढेर सारे उत्पादकों के सामूहिक श्रम का उत्पाद बन जाता है।

इस तरह पूंजीवाद सामाजिक श्रम की उत्पादक शक्तियों में वृद्धि और श्रम का सामाजीकरण करता जाता है। यही पूंजीवादी विकास का प्रगतिशील ऐतिहासिक महत्व है। उत्पादक शक्तियों का विकास व उत्पादन का सामाजिक स्वरूप कम्युनिज्म के लिए बेहतर आर्थिक आधार तैयार करता जाता है।

छोटे पैमाने के उत्पादन, छोटी सम्पत्ति को तबाह कर समूचे उत्पादन को बड़े संस्थानों में केन्द्रित करते हुए अधिकाधिक सामाजिक बनाते जाना, एक देश ही नहीं दुनिया के पैमाने पर उत्पादन का केन्द्रीयकरण, कृषि का भी कारपोरेट फार्मिंग में विकास, राष्ट्र-राज्यों का पैदा होना व बाद में इनकी सीमाओं के तिरोहण के प्रयास (यूरोपीय संघ व मुक्त व्यापार क्षेत्रों के रूप में) विश्व मंडी का विकास आदि ऐसे कुछ कदम रहे हैं जो समाजवाद व कम्युनिज्म के लिए बेहतर आर्थिक आधार तैयार करते जा रहे हैं।

अपने क्रांतिकारी दौर में पूंजीपति वर्ग ने सामंती व्यवस्था, धर्म, सामंती अभिजातों के विशेषाधिकारों से लोहा लिया और सामंती व्यवस्था की जगह पूंजीवादी व्यवस्था की स्थापना की। पूंजीपति वर्ग की यह क्रांतिकारिता सबसे स्पष्ट रूप में 1789 की फ्रांसीसी क्रांति में दिखलाई दी। पर फिर भी पूंजीपति वर्ग की क्रांतिकारिता इसकी पैदाईश के वक्त से ही सीमित थी। इसके द्वारा की गयी हर क्रांति में मेहनतकश वर्गों के ऐसे स्वतंत्र विस्फोट भी हुए जो क्रांति को और आगे ले जाना चाहते थे। जर्मनी के धर्म सुधार व किसान युद्ध के समय अनाबैप्टिस्ट और टामस मूंजर का आंदोलन, इंग्लिश क्रांति के वक्त लेवलर्स और फ्रांसीसी क्रांति के वक्त बाब्योफ का आंदोलन इसी तरह के विस्फोट थे।

कालान्तर में जैसे-जैसे सर्वहारा वर्ग एक संगठित ताकत के रूप में इतिहास के रंगमंच पर उभरता गया वैसे-वैसे पूंजीपति वर्ग की क्रांतिकारिता घटती गयी। अब सर्वहारा के खिलाफ वह अधिकाधिक प्रतिक्रियावादी वर्गों, धर्म आदि से समझौते करने लगा। 20वीं सदी का अन्त आते-आते जब दुनिया भर के गुलाम देश राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल कर चुके थे और यहां पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों का विकास हो चुका था तो इन गुलाम देशों का बुर्जुआ वर्ग भी प्रतिक्रियावादी हो गया।

अपनी पैदाइश के वक्त से रक्त और गंदगी में सनी पूंजी ने पिछले 500 वर्षों में जितने काले कारनामे किये हैं और अभी भी करती जा रही है, उनकी फेहरिस्त बहुत लम्बी है। इन कारनामों का निरंतर जारी रहना ही बतलाता है कि ये पूंजीवादी विकास प्रक्रिया के अनिवार्य हिस्से हैं न कि कोई अपवाद या आकस्मिक घटनाएं जैसा कि पूंजीवाद समर्थक दावा करते हैं। पूंजीवाद द्वारा पैदा की गयी विभीषिकायें ही यह साबित करने के लिए काफी हैं कि यह एक अमानवीय व्यवस्था है और इसे बदला जाना जरूरी है। यहां इनमें से कुछ का वर्णन किया गया है।

a. आन्तरिक तबाही

1789 की फ्रांसीसी क्रांति के वक्त जब स्वतंत्रता-समानता-भातृत्व का नारा उछाला गया तो पूंजीपति वर्ग के पीछे तमाम मेहनतकश जनसमुदाय इस उम्मीद से खड़ा हो गया कि सामंती व्यवस्था के विनाश से उसके जीवन की बदहाली खत्म हो जायेगी। पर बदहाली के खत्म होने की यह आस आज तक पूरी नहीं हुई। पूंजीवादी व्यवस्था में यह पूरी हो भी नहीं सकती।

पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के विकास की पूर्वशर्त के रूप में जरूरी है कि मजदूरों की एक बड़ी आबादी जो उत्पादन के साधनों से वंचित कर दी गयी हो, अपनी श्रमशक्ति बेचने के लिए स्वतंत्र हो। इसके साथ ही पूंजीपति वर्ग के पास कच्चा माल, उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति को खरीद उत्पादन प्रक्रिया शुरु करने के लिए पर्याप्त मात्रा में धन सम्पदा संचित हो चुकी हो।

उत्पादक को उत्पादन के साधनों से अलग कर अपनी श्रमशक्ति बेचने के लिए मजबूर मजदूर में परिवर्तित करने की प्रक्रिया आदिम संचय का अभिन्न हिस्सा है। बुर्जुआ चाटुकार इस प्रक्रिया को इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि पूंजीवादी विकास ने भूदासों को भूदास प्रथा से और शिल्प संघ के उत्पादकों को शिल्प संघों के बंधनों से आजाद कर दिया। वे इस वास्तविकता को छिपा जाते हैं कि भूदासता और शिल्प संघ के बंधनों से मुक्त लोगों को जीवन निर्वाह के समस्त साधनों से भी मुक्त कर दिया जाता है उनके उत्पादन के साधन छीन लिए जाते हैं। सामंती व्यवस्था में उनके पास जीवन निर्वाह की जो थोड़ी-बहुत गारंटी थी उसका संपत्तिहरण कर लिया जाता है। अब उत्पादक के पास अपनी श्रमशक्ति बेचने के अलावा और कोई चारा नहीं रहता, वह उजरती मजदूर में तब्दील हो जाता है।

उत्पादकों के संपत्तिहरण की यह प्रक्रिया पूंजीवादी उत्पादन की शुरुआत से लेकर आज तक जारी है। जहां शुरुआती काल में इसे जोर जबर्दस्ती व हिंसा के जरिये अंजाम दिया गया वहीं बाद में पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया छोटे उत्पादकों की तबाही के रूप में इसे खुद ही अंजाम देने लगती है। हालांकि जोर जबर्दस्ती व हिंसा अब भी इस प्रक्रिया को त्वरित करने में भूमिका निभाते रहते हैं।

इंग्लैण्ड का बाड़ाबंदी आंदोलन आदिम संचय की इस प्रक्रिया का सर्वप्रमुख उदाहरण है। किसानों से उनकी भूमि के अपहरण के लिए 300 वर्षों तक जो-जो तौर-तरीके इंग्लैण्ड में अपनाये गये उन्हें याद करना आज बुर्जुआ वर्ग के चाटुकार पसन्द नहीं करते। इंग्लैण्ड में किसानों को जबरन जागीरों से खदेड़ा गया। खेती की जमीन को भेड़ पालन के लिए बाड़ों में या चरागाहों में तब्दील कर दिया गया। 15 वीं शताब्दी के अंतिम काल से शुरु हुई यह प्रक्रिया 19 वीं सदी के मध्य तक जारी रही। इस प्रक्रिया का वर्णन कार्ल मार्क्स अपनी प्रसिद्ध रचना पूंजी के पहले खण्ड में इन शब्दों में करते हैं।

> "... ... ... इससे कहीं अधिक बड़ा सर्वहारा वर्ग बड़े-बड़े सामंतों ने राजा और संसद के विरुद्ध धृष्टतापूर्वक संघर्ष करते हुए किसानों को जबर्दस्ती उन जमीनों से खदेड़कर जिन पर उनका भी खुद सामंतों के समान ही सामंती अधिकार था, और सामूहिक भूमि को छीनकर पैदा कर दिया। फ्लैंडर्स में ऊन के उद्योग का तेज विकास होने और उसके साथ-साथ इंग्लैण्ड में ऊन का भाव बढ़ जाने से इन बेदखलियों को प्रत्यक्ष रूप से बढ़ावा मिला। पुराना अभिजात वर्ग बड़े-बड़े सामंती युद्धों में मर-खप गया था। नया अभिजात वर्ग अपने युग की संतान था, जिसके लिए पैसा ही सबसे बड़ी ताकत था। इसलिए उसका नारा था कि खेती की जमीन को भेड़ों के बाड़ों में बदल डालो। ... ... हैरिसन ने लिखा है : "यदि हर जागीर के कागज देखे जायें, तो शीघ्र ही यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि कुछ जागीरों में सत्रह, अठारह या बीस घर तक नष्ट हो गये हैं... ... ... और इंग्लैण्ड में आजकल जितनी कम आबादी है, उतनी कम पहले कभी न थी... ... ... मैं ऐसे अनेक शहरों और कस्बों का वर्णन कर सकता हूं... ... ... जो या तो बिल्कुल तबाह हो गये हैं या जिनका चौथाई या आधा भाग बरबाद हो गया है, हालांकि यह भी मुमकिन

है कि जहां-तहां एकाध शहर पहले से थोड़ा बढ़ गये हों; और मैं ऐसे कस्बों के बारे में कुछ बता सकता हूं, जिनको गिराकर भेड़ों के बाड़े बना दिये गये हैं और जिनकी जगहों पर अब केवल सामंती प्रभुओं के महल खड़े हैं।... ... ...

"... ... ... छोटे काश्तकारों और किसानों के संपत्तिहरण के विरुद्ध लोगों ने बहुत शोर मचाया और हेनरी सातवें के बाद डेढ़ सौ वर्ष तक इस संपत्तिहरण को रोकने के लिए अनेक कानून भी बनाये गये। लेकिन दोनों ही चीजें व्यर्थ सिद्ध हुई।"... ... ...

"लोगों की संपत्ति का बलपूर्वक अपहरण कर लेने की प्रक्रिया को 16वीं शताब्दी में रोमन चर्च के सुधार से और उसके फलस्वरूप चर्च की सम्पत्ति की लूट से एक नया तथा जबर्दस्त बढ़ावा मिला। चर्च सुधार के समय कैथोलिक चर्च इंग्लैण्ड की भूमि के एक बहुत बड़े हिस्से का सामंती स्वामी था। जब मठों, आदि पर ताले डाल दिये गये, तो उनमें रहने वाले लोग सर्वहारा की पांतों में भर्ती हो गये। चर्च की जागीरें अधिकतर राजा के लुटेरे कृपा-पात्रों को दे दी गयीं या नाम मात्र के दाम पर सट्टेबाज काश्तकारों और नागरिकों के हाथ बेच दी गयीं, जिन्होंने सारे के सारे पुश्तैनी शिकमीदारों को जमीन से खदेड़ दिया और उनकी जोतों को मिलाकर एक कर लिया।... ... ...रानी एलिजाबेथ इंग्लैण्ड की यात्रा करने के बाद चिल्ला पड़ी थी कि ''यहां तो सब ओर कंगाल ही कंगाल हैं।" उसके राज्यकाल के 43वें वर्ष में राष्ट्र को गरीबों की आर्थिक सहायता करने के लिए कर लगाकर सरकारी तौर पर यह मान लेना पड़ा कि देश में मुंहताजी फैली हुई है। ... ...

" "गौरवशाली क्रांति" के परिणामस्वरूप सत्ता ओरेंज के विलियम ही नहीं, बेशी मूल्य हड़पने वाले जमींदारों और पूंजीपतियों के हाथ में चली गयी। उन्होंने सरकारी जमीनों की बहुत ही बड़े पैमाने पर लूट मचाकर नये युग का समारंभ किया, इसके पहले यह लूट कुछ छोटे पैमाने पर होती थी। ये सरकारी जागीरें ईनाम में दे दी गयी, हास्यास्पद दामों पर बेच दी गयीं या यहां तक कि सीधे-सीधे जबर्दस्ती करके निजी जागीरों में मिला ली गयीं। और यह सब करते हुए कानूनी शिष्टाचार की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया।" ... ...

"चर्च की संपत्ति की लूट, राज्य के इलाकों पर धोखाधड़ी से कब्जा कर लेना, सामूहिक भूमि की डाकाजनी, सामंती संपत्ति तथा कुलों के संपत्तिहरण और आतंकवादी तरीकों का अंधाधुंध प्रयोग करके उसे आधुनिक ढंग की निजी सम्पत्ति में बदल देना- ये ही वे सुंदर तरीके हैं, जिनके जरिये आदिम संचय हुआ था। इन तरीकों के जरिये पूंजीवादी खेती के लिए मैदान साफ किया गया, भूमि को पूंजी का अभिन्न अंग बनाया गया, और शहरी उद्योगों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए एक ''स्वतंत्र'' और निराश्रय सर्वहारा को जन्म दे दिया गया।'' (कार्ल मार्क्स : पूंजी खण्ड 1, पृष्ठ 754-771, प्रगति प्रकाशन, मास्को)

किसानों की भूमि अपहरण कर उन्हें मजदूर बनाने की यह प्रक्रिया खुद पूंजीवाद के 'निजी संपत्ति की पवित्रता' के उसूल को खुलेआम धता बता कर चलायी गयी। किसानों को भूमि से खदेड़ने के लिए उनके घरों को जबरन आग के हवाले कर दिया गया। गांव के गांव किसानों से खाली करा उनकी जगह भेड़ों ने ले ली। कानूनों द्वारा इस जोर जबर्दस्ती को रोकने के प्रयास न केवल बेकार साबित हुए बल्कि जोर जबर्दस्ती बढ़ाने के वायस बन गये। बाद में भेड़ों के चरागाहों की जगह हिरनों के जंगलों ने ले ली। कई दफा तो शिकार खेलने के लिए बड़े-बड़े इलाके उजाड़ दिये गये।

लूट-धोखाधड़ी से भरपूर इस प्रक्रिया का बुर्जुआ वर्ग के पैरोकारों ने कुछ ऐसा चित्र खींचा जिसमें राष्ट्र की खुशहाली व तरक्की झलकने लगती है। उन्होंने इसे इस रूप में प्रस्तुत किया कि खेती में लगी अतिरिक्त आबादी को उद्योगों की उत्पादन प्रक्रिया में लगा कुल राष्ट्रीय उत्पादन में अगर वृद्धि हो सकती है तो इसमें कुछ भी गलत नहीं है। कुछ तो यहां तक चले गये कि कृषि भूमि व चरागाह/जंगल की भूमि का अनुपात ठीक करने के लिए यह प्रक्रिया जरूरी थी। ये बुर्जुआ कलमघसीट उन जुल्मों, मानवीय कष्टों की पूरी गाथा को छुपा ले जाते हैं जो इस दौरान उजड़ने वाले किसानों को झेलनी पड़ी।

आदिम संचय से शुरू हुई यह भूमि से बेदखली की प्रक्रिया समाप्त नहीं हुई बल्कि समूचे पूंजीवादी काल में यह बदस्तूर जारी रही। जहां कहीं भी पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध कायम होने की ओर बढ़े वहां यही प्रक्रिया अलग-अलग तरीकों से अपनायी गयी। कहीं यह भूमि की खरीद बेच की शुरुआत से हुई तो कहीं जोर जबर्दस्ती से। हर जगह उत्पादन के साधनों से वंचित सर्वहारा उत्पन्न किया गया। यह प्रक्रिया आज भी बदस्तूर जारी है छोटे उत्पादकों की तबाही और उनका सर्वहारा की पांतों में धकेला जाना पूंजीवादी संचय का अनिवार्य परिणाम है। इसीलिए पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया अमीरी व कंगाली दोनों का संचय करती जाती है। एक छोर पर अथाह पूंजी का इकट्ठा होना व दूसरे छोर पर भारी कंगाली पैदा होना पूंजीवादी विकास का अनिवार्य परिणाम है।

पूंजीपति और मजदूर वर्ग; पूंजीवाद के दो प्रमुख वर्ग हैं बीच के सभी वर्ग पूंजीवादी विकास की प्रक्रिया में तबाह होने को अभिशप्त हैं। अगर किसी कारणवश किसी काल में बीच के वर्गों की तबाही की गति मद्धिम पड़ती भी है तो यह पूंजीवाद की गति के चलते नहीं बल्कि अन्य कारकों मसलन सर्वहारा व अन्य मेहनतकश तबकों के संघर्ष, समाजवाद के दबाव आदि के चलते होता है।

किसानों की भूमि के अपहरण की यह प्रक्रिया जहां अमेरिकी समाज में अपने चरम छोर पर पहुंची हुई है जहां समूची कृषि ही पूंजीवादी फार्मों में तब्दील हो चुकी है। वहीं; यूरोप के पूंजीवादी देशों में किसानों के कंगालीकरण की यह प्रक्रिया अभी जारी है। आज किसानों के असंतोष के भय से यूरोप के देशों की सरकारें भारी सब्सिडी दे कर इस प्रक्रिया को धीमा किये हुए हैं। एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के देशों में यह प्रक्रिया व इसकी क्रूरता आज कहीं अधिक स्पष्टता के साथ दिखलायी पड़ती है। तरह-तरह के पूंजीवादी प्रोजेक्टों के लिए भूमि अधिग्रहण और किसानों द्वारा उसका प्रतिरोध राजसत्ता द्वारा किसानों का दमन, भूमि अधिग्रहण के लिए तरह-तरह के छल-फरेब आज भारत ही नहीं तीसरी दुनिया के तमाम देशों की आम परिघटना है।

बुर्जुआ वर्ग आज विकास के नाम पर भूमि अधिग्रहण के अपने इन तमाम प्रयासों, जिसमें वह खुद किसी की 'निजी सम्पत्ति की पवित्रता' का उल्लंघन करता है, को जायज ठहराता है। मुआवजे के चंद टुकड़े फेंक वह इस सम्पत्तिहरण को छुपा लेना चाहता है।

छोटी-मझोली किसानी को सम्पत्तिहरण की प्रक्रिया एक अन्य रूप में पूंजीवादी कृषि के अनिवार्य परिणाम के रूप में जारी है। बाजार की ताकतों के आगे बेबस किसानों की तबाही, उनकी कर्ज में डूब कर की जाने वाली आत्महत्यायें, उनका अपनी जमीनें बेच सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा में बदलते जाना पूंजीवादी उत्पादन का अवश्यम्भावी परिणाम है।

पूंजीवादी विकास के नाम पर इतनी बड़ी आबादी के जीवन को कंगाली में धकेलना किन्हीं भी कुतर्कों से जायज नहीं ठहराया जा सकता। इसी तरह अमीरी और कंगाली के दो छोरों को मनुष्यों की भिन्न-भिन्न व्यक्तिगत क्षमताओं से या व्यवसाय करने की स्वतंत्रता से जोड़ कर देखना भी कहीं से ठीक नहीं है। पर यह भी हकीकत है कि पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया इससे भिन्न परिणाम पैदा भी नहीं कर सकती।

पूंजीवादी विकास की प्रक्रिया में न केवल किसानों का सम्पत्तिहरण किया गया बल्कि भांति-भांति की जबर्दस्ती के जरिये उन्हें उजरती गुलामों में भी तब्दील किया गया। पूंजीवाद के शुरुआती काल में संपत्तिहृत लोगों के खिलाफ एक के बाद एक खूनी कानूनों का निर्माण कर उद्योगों को श्रम की आपूर्ति की गयी। 15वीं-16वीं शताब्दी में जब संपत्तिहृत लोगों की एक अच्छी खासी संख्या, भिखारियों, डाकुओं व आवारा लोगों में बदलने लगी तो एक से बढ़कर एक कड़े कानूनों के जरिये उन्हें काम पर लगाया गया।

इंग्लैण्ड में हेनरी आठवें के राज्यकाल में 1530 में एक कानून बनाया गया जिसके तहत काम करने लायक न रह जाने वाले बूढ़े भिखारियों को भीख मांगने का लाइसेंस दे दिया गया। साथ ही हट्टे-कट्टे आवारा लोगों को कोड़े मारकर जेल में डाल दिया जाता था। इन लोगों को गाड़ी के पीछे बांधकर खून बहने तक कोड़े मारे जाते थे इसके पश्चात उनसे कसम दिलायी जाती थी कि वे अपने जन्म स्थान या उस स्थान लौट जायेंगे जहां वे पिछले 3 साल से रह रहे थे और वहां जाकर वे श्रम करेंगे। हेनरी आठवें के समय ही बने एक अन्य कानून के तहत दूसरी बार आवारागर्दी के अपराध में पकड़े जाने वाले व्यक्ति को कोड़े लगाये जाते थे और उसका आधा कान काट लिया जाता था और तीसरी बार पकड़े जाने पर समाज का शत्रु व पक्का अपराधी घोषित कर फांसी दे दी जाती थी। 1547 में एडवर्ड छठे के समय बने कानून के अनुसार यदि कोई व्यक्ति काम करने से इन्कार करता था तो उसे उस व्यक्ति की गुलामी करनी पड़ती थी, जिसने उसके खिलाफ शिकायत की थी। गुलाम का मालिक गुलाम से कैसा भी काम ले सकता था। गुलाम के 14 दिन काम से गैरहाजिर होने पर उसके माथे या गाल पर S निशान दाग जीवन भर के लिए गुलाम बना दिया जाता था। गुलाम को खरीदा-बेचा जा सकता था। गुलाम यदि तीसरी बार काम से भाग जाता या मालिक के खिलाफ कुछ करने की कोशिश करता तो उसे फांसी दे दी जाती थी। एलिजाबेथ के काल में 1572 में बने कानून के तहत 14 वर्ष से अधिक उम्र के भिखारी जिन पर लाइसेंस न हो, को कोड़े व बायां कान दागने की सजा दी जाती थी। इस सजा से वे तभी छूट सकते थे जब कोई आदमी उन्हें दो साल के लिए नौकर रख ले। दोबारा पकड़े जाने पर 18 वर्ष से अधिक उम्र के व्यक्ति को अगर कोई दो साल के लिए नौकर रखने पर राजी नहीं होता तो उसे फांसी दे दी जाती थी। तीसरी बार पकड़े जाने पर हर हालत में उसे मार डाला जाता था।

इसी तरह फ्रांस में लुई सोलहवें के शासन काल में 1777 में कानून बनाया गया कि 16 से 60 वर्ष की आयु के प्रत्येक पुरुष को जिस पर जीवन निर्वाह के कोई साधन नहीं हैं और जो कोई धंधा नहीं करता, फौजी बेड़े में मल्लाह की मशक्कत करने भेज दिया जाय।

इस प्रकार किसानों की पहले जबर्दस्ती जमीनें छीनी गयी, फिर उनको घरों से खदेड़ आवारा बनाया गया और उसके बाद निर्मम कानूनों के जरिये कोड़े लगाये गये, दहकते लोहे से दाग तरह-तरह की यातनायें दी गयीं और इस प्रकार उनको मजदूरी की प्रणाली के लिए आवश्यक अनुशासन सिखाया गया।

इस प्रकार पूंजीवादी उत्पादन की प्रगति एक ऐसे मजदूर वर्ग का विकास करती है जो अपनी शिक्षा, परम्परा और अभ्यास के कारण उत्पादन की इस प्रणाली को प्रकृति के स्वतः स्पष्ट नियमों के समान समझने लगता है। पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया के पूर्णतया विकसित हो जाने के बाद सापेक्ष बेशी आबादी अर्थात बेरोजगारों की फौज को उत्पन्न कर मजदूर को पूंजी के पूर्णतया अधीन कर लिया जाता है। अब जोर जबर्दस्ती का तत्व घटता जाता है और पूंजीवादी उत्पादन की परिस्थितियां मजदूर को हमेशा पूंजी पर निर्भर बनाये रखती हैं। पर पूंजीवादी उत्पादन के शुरुआती काल मे जोर जबर्दस्ती का तत्व ही प्रमुख था। बगैर जोर जबर्दस्ती के काम के दिन को इतना लम्बा करना व मजदूरी को इतना गिराना कि ठीक-ठाक बेशी मूल्य प्राप्त हो जाये, सम्भव नहीं था। राज्य ने कानूनों के जरिये मजदूरी गिराने व जोर जबर्दस्ती में बुर्जुआ वर्ग की हर तरह से मदद की।

आज बुर्जुआ वर्ग के समर्थक पूंजीवाद के शुरुआती काल में ढायी गयी इस तबाही को याद नहीं करना चाहते। पर यह वास्तविकता है कि शुरुआती काल के खूनी कानूनों से पैदा की तबाही के बगैर पूंजीवाद आगे नहीं बढ़ सकता था। पूंजीवादी विकास अपने आगे के कालों में भी निरंतर भांति-भांति की तबाही पैदा करता रहता है।

पूंजी संचय की प्रक्रिया समाज में अमीर और गरीब की खाई को लगातार चौड़ा करती जाती है। अमीरी-गरीबी की यह खाई पूंजीवादी विकास की प्रक्रिया में इतनी स्पष्ट होती है कि बुर्जुआ अर्थशास्त्री भी इसे स्वीकारने को मजबूर होते हैं हालांकि वे इसे जायज ठहराने में जुटे रहते हैं। वे तर्क करते हैं कि समाज को सुखी बनाने के लिए और जनता को बुरी से बुरी हालत में संतुष्ट रखने के लिए जरूरी है कि उसकी बड़ी संख्या को गरीबी व जहालत में रखा जाय। उनके अनुसार संयत जीवन व्यतीत करना और हमेशा काम में जुटे रहना गरीबों के लिए विवेक संगत सुख का और राज्य के लिए समृद्धि और शान्ति का प्रत्यक्ष मार्ग है (बर्नाड डी मेंदेवील)।

ये बुर्जुआ अर्थशास्त्री काहिली को मनुष्य का मूलभूत गुण मानते हुए बताते हैं कि अगर मजदूर को जीवन निर्वाह की न्यूनतम राशि से अधिक दे दिया गया तो वो काम करने में काहिली दिखाने लगेगा परिणामस्वरूप समाज का कुल उत्पादन गिर जायेगा। इसलिए

राज्य की समृद्धि के लिए जरूरी है कि मजदूरों को कम से कम मजदूरी दी जाये ताकि वे अधिक से अधिक काम के लिए तत्पर हों। बुर्जुआ वर्ग चूंकि स्वयं काहिल व कामचोर होता है इसलिए वह सभी लोगों का यह नैसर्गिक गुण मानने लगता है। इसी तरह कुछ बुर्जुआ अर्थशास्त्री पूंजी संचय को पूंजीपति वर्ग के संयम का परिणाम बताते हैं जो कि वह पूरे समाज की भलाई के लिए करता है। वास्तविकता यह है कि प्रतियोगिता में असफलता और दिवालिया होने का डर पूंजीपति को अपनी प्रतियोगी क्षमता बढ़ाने के लिए संचय को मजबूर करता है।

बाद के काल में कुछ बुर्जुआ अर्थशास्त्री यह बात प्रचारित करने लगे कि अमीरों से समृद्धि छन-छन कर गरीबों तक पहुंचती है। इसलिए अमीर जितने अमीर होते जायेंगे, गरीबों का जीवन भी बेहतर होता जायेगा। 19 वीं सदी के अन्त व 20वीं सदी में जब पूंजीवादी विकास की अपनी गति के चलते नहीं बल्कि समाजवाद के दबाव, मेहनतकशों के संघर्षों के चलते मजदूरों के जीवन स्तर में कुछ सुधार हुआ तो बुर्जुआ चाटुकार ही नहीं बर्नस्टीन सरीखे संशोधनवादी भी इसे पूंजीवाद की आम गति घोषित करने लगे।

वास्तविकता यही है कि पूंजीवादी विकास की आम प्रवृत्ति अमीरी-गरीबी की खाई को लगातार चौड़ा करते जाना है। अगर समाज के आम विकास के चलते या अन्य कारकों से मजदूरों का जीवन स्तर किसी काल में कुछ बेहतर भी होता है तब भी यह खाई चौड़ी ही होती रहती है। मजदूर साईकिल की जगह मोटरसाईकिल से चलने लगता है तो पूंजीपति कार की जगह अपने हवाई जहाज में सैर करने लगता है।

जब वैश्वीकरण के मौजूदा दौर में मजदूर वर्ग पर पूंजी द्वारा हमला तेज कर दिया गया, कल्याणकारी राज्य को तहस-नहस कर दिया गया तब अमीरी-गरीबी की असमानता और तेजी से बढ़ने लगी। हालत यह हो गयी कि साम्राज्यवादी संस्थाओं व बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों को भी इस पर चिन्ता व्यक्त करनी पड़ी। आज हालत यह है कि यूनिसेफ की एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के ऊपरी 20 प्रतिशत लोग वैश्विक आय का 70% हासिल करते हैं जबकि सबसे नीचे के लोग महज 2 प्रतिशत (2007 में, क्रय शक्ति समतुल्यता के आधार पर)। बाजार दर पर ऊपरी 20% वैश्विक आय का 83 % व निचले 20 प्रतिशत महज 1% हासिल करते हैं।

पूंजीवादी संचय का अनिवार्य परिणाम सापेक्ष बेशी आबादी अर्थात बेरोजगारों की फौज के रूप में सामने आता है। पूंजीवादी उत्पादन में बारंबार मंदी-तेजी आने के चलते इस रिजर्व फौज को कायम रखना उसके अस्तित्व की जरूरी शर्त बन जाता है। बेरोजगारी को विश्लेषित करते हुए माल्थस सरीखे अर्थशास्त्रियों ने ढेरों कुतर्क गढ़े। उन्होंने घोषित कर दिया कि जनसंख्या गुणोत्तर श्रेणी (1,2,4,8....) जबकि जीविका के साधन समान्तर श्रेणी (1,2,3,4...) में बढ़ते हैं। अतः फालतू आबादी, गरीबी पूंजीवाद के चलते नहीं बल्कि प्रकृति के नियम का परिणाम है।

जनसंख्या वृद्धि को बेकारी, गरीबी, भुखमरी के कारण के बतौर दुनियाभर के शासक लगातार प्रचारित करते रहते हैं। इसके जरिये वे पूंजीवादी विकास के अनिवार्य परिणाम के रूप में व उसके अस्तित्व की शर्त के रूप में बेकारी के पैदा होने को छिपा लेना चाहते हैं। जनसंख्या व बेकारी के सम्बन्ध का यह कुतर्क आज उन देशों में तार-तार हो चुका है जहां जनसंख्या वृद्धि दर शून्य या बेहद निम्न हो चुकी है पर फिर भी बेरोजगारी बढ़ती पर है।

पूंजीवादी समाज का यह भी खास गुण है कि पूंजीपति अपना मुनाफा बढ़ाने, अपने मालों की बिक्री बढ़ाने के लिए एक के बाद एक उपभोक्ता सामग्रियों-सेवाओं को पैदा करते जाते हैं। ये माल-सेवायें बिक सकें इसके लिए प्रचार माध्यमों का इस्तेमाल कर पूरे समाज को उपभोक्तावादी संस्कृति में सराबोर कर देते हैं। पर दूसरी ओर लगातार गरीबी-बेकारी का समुद्र भी पैदा होता रहता है। ऐसे में बेकार नौजवान-मेहनतकशों के पास इसके अलावा कोई चारा नहीं होता कि वे अपनी जरूरतों की पूर्ति के लिए अपराध-हिंसा का सहारा लें।

पूंजीवादी समाजों में लगातार बढ़ते अपराध एक कलंक के रूप में मौजूद हैं। इस कलंक से छुटकारा दिलाने के नाम पर बन रहे कानून किसी भी काम नहीं आ रहे हैं। हत्या, लूटमार, डकैती, वसूली आदि अपराध पूंजीवाद के सिरमौर अमेरिका तक में लगातार बढ़ रहे हैं। इसमें और वृद्धि तब हो जाती है जब अपराध व नशाखोरी एक संगठित कारोबार का रूप ले लेते हैं। आज हालत यह है कि अमेरिकी समाज में असुरक्षा इतनी बढ़ गयी है कि किसी इन्सान को दूसरे इन्सान पर किसी तरह का भरोसा नहीं रह गया है। हर कोई एक-दूसरे को शक की निगाह से देखने को मजबूर है। व्यक्ति अपनी आत्मरक्षा में हथियार रखने के बाद भी असुरक्षा व खौफ के साये में जीने को मजबूर हैं। मनोविकार, मानसिक अवसाद, लगातार बढ़ती पर हैं। जब तब कोई बच्चा बंदूक उठाकर अपने सहपाठियों, शिक्षकों पर गोलियां बरसाने लगता है। कोई नवयुवक यूं ही भीड़-भाड़ वाले इलाके में फायरिंग करने लगता है। आत्महत्या के सामूहिक प्रयास होने लगते हैं।

सांस्कृतिक पतन, अपराध-नशे का बोलबाला, मानसिक विकारों का बढ़ना पूंजीवादी विकास का अनिवार्य परिणाम हैं। यह सभी पूंजीवादी देशों में बढ़ती पर हैं।

स्पष्ट है कि पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली अपने जन्म के वक्त से ही समाज में तबाही पैदा करती आयी है जो आज भी भांति-भांति के रूपों में जारी है। पूंजीवादी समाज में मेहनतकशों को अगर कुछ भी सकारात्मक हासिल हुआ है तो उसमें पूंजीवाद की भूमिका कम, मेहनतकशों के संघर्षों व समाजवाद के दबाव की ही प्रमुख भूमिका रही है। सार्विक मताधिकार, सामाजिक सुरक्षा देने वाले कानून, काम के घण्टे नियत होना, संगठित होने का अधिकार आदि सभी कुछ तो मजदूर वर्ग के संघर्षों के दम पर हासिल हुआ है। आज के उदारीकरण के दौर में पूंजी इन सबको छीनने पर उतारू है। वह फिर से 18वीं-19वीं सदी के हालात में मजदूर वर्ग को धकेलना चाहती है जहां न तो काम के घण्टे तय थे और न ही शोषण-उत्पीड़न की ही कोई सीमा मौजूद थी।

सार्विक मताधिकार पर आधारित संसदीय प्रणाली जिस पर उदारवादी बुर्जुआ बुद्धिजीवी इतना इतराते हैं, वहां तक भी पूंजीवादी देशों को पहुंचाने का काम मजदूर वर्ग ने ही किया। बुर्जुआ जनवाद, बुर्जुआ स्वतंत्रताओं की हकीकत यह है कि वो हमेशा ही कटी-छंटी, आधी-अधूरी व बुर्जुआ वर्ग के लिए जनवाद व सर्वहारा वर्ग के ऊपर तानाशाही के रूप में ही सामने आती है। एक पूंजीपति व एक मजदूर कानूनी-राजनीतिक तौर पर बराबर घोषित हो जाते हैं पर पूंजीपति वर्ग अपनी पूंजी की ताकत के दम पर सरकार, राज्यसत्ता, मीडिया पर नियंत्रण करता है वहीं मजदूर पूंजी के अभाव में अकेले-अकेले कारखाने में खटने के अलावा कुछ भी हासिल नहीं कर पाता। केवल संगठित होकर ही वो इन स्वतंत्रताओं में से कुछ को हासिल कर पाता है।

पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली अपनी पैदाइश के वक्त से ही मजदूरों-मेहनतकशों को ठण्डी मौतें देती रही है। आदिम संचय के काल से आज तक अनगिनत लोग केवल औद्योगिक दुर्घटनाओं के चलते, कुपोषण का शिकार होकर, भुखमरी के चलते, मामूली बीमारियों के चलते मारे जा चुके हैं। यह सब अति उत्पादन के बावजूद हुआ। ये सारी मौतें रोकी जा सकती थीं पर पूंजीवाद के 500 वर्षो का इतिहास ऐसी ठण्डी मौंतों से भरा हुआ है। पर मॉल्थस के दुष्ट चेले इन मौतों को जनसंख्या व जीवन निर्वाह के साधनों के बीच संतुलन स्थापित करने वाली बता इनका स्वागत करते रहते हैं।

b. बाह्य तबाही

पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली ने केवल उन समाजों के भीतर ही तबाही पैदा नहीं की जहां यह स्थापित हुयी बल्कि उसने उन समाजों से बाहर भी बड़े पैमाने पर तबाही-बर्बादी पैदा की। आदिम पूंजी संचय के काल से लेकर आधुनिक साम्राज्यवादी युग तक में तबाही का यह सिलसिला जारी है। तबाही की यही प्रक्रिया पूंजी द्वारा प्राक पूंजीवादी सम्बन्धों को पूंजीवादी सम्बन्धों में बदलने की भी प्रक्रिया होती है। विकसित पूंजीवादी देशों ने बाकी दुनिया को भी इस प्रक्रिया के जरिये पूंजीवादी रास्ते पर आगे बढ़ने को मजबूर कर दिया।

व्यापारिक पूंजीवाद के दौर में 16वीं शताब्दी तक आदिम पूंजी संचय को अंजाम देने का कार्य प्रमुखतया व्यापारी वर्ग ने किया। पर उन्होंने जो तौर-तरीके अपनाये वे याद करना आज पूंजीपति वर्ग के चाटुकारों के लिए आसान नहीं हैं क्योंकि इन तौर-तरीकों ने सामंती शोषण व दास प्रथा के रूपों से क्रूरता के मामले में मानो प्रतियोगिता की ठान ली थी। जुल्मों की लम्बी शृंखला को मार्क्स पूंजी में इन शब्दों में व्यक्त करते हैं।

> "अमेरिका में सोने और चांदी की खोज; आदिवासी आबादी का समूल नष्ट कर दिया जाना, गुलाम बनाया जाना और खानों में जिंदा दफना दिया जाना; ईस्ट इंडिया की विजय तथा लूट का श्री गणेश; अफ्रीका का हबशियों के व्यापारिक आखेट की भूमि बन जाना- इसी प्रकार की घटनाओं के द्वारा यह संकेत मिला था कि पूंजीवादी उत्पादन का अरुणोदय हो रहा है। इन सुखद क्रियाओं का आदिम संचय में मुख्य भाग रहा है। उनके बाद तुरंत ही यूरोपीय राष्ट्रों का वाणिज्य-युद्ध आरम्भ हो गया, जिसका क्षेत्र पूरा भूगोल था। वह शुरु हुआ स्पेन के आधिपत्य के विरुद्ध नीदरलैण्ड के विद्रोह से, इंग्लैण्ड के जैकोबिन विरोधी युद्ध में उसने भयानक विस्तार प्राप्त किया और चीन के खिलाफ अफीम-युद्धों के रूप में वह आज भी जारी है, इत्यादि।
>
> "आदिम संचय के विभिन्न तत्व अब न्यूनाधिक रूप में कालक्रमानुसार खास तौर पर स्पेन, पुर्तगाल, हालैण्ड, फ्रांस और इंग्लैण्ड के बीच बंट गये थे। इंग्लैण्ड में 17वीं शताब्दी के अंत में उन सबको उपनिवेश-प्रणाली, राष्ट्रीय ऋण, आधुनिक कर-प्रणाली और संरक्षक-प्रणाली के रूप में सुनियोजित ढंग से जोड़ दिया गया। कुछ हद तक ये तरीके पाशविक बल पर निर्भर करते हैं, जिसका उदाहरण है औपनिवेशिक व्यवस्था। लेकिन जिस तरह गरम नर्सरी में पौधों का विकास जल्दी से पूरा कर डालने की कोशिश की जाती है, उसी प्रकार सामंती उत्पादन-प्रणाली को पूंजीवादी प्रणाली में रूपांतरित करने की क्रिया को जल्दी से पूरा कर डालने के लिए और उसको संक्षिप्त कर देने के उद्देश्य से इन सभी तरीकों में समाज के संकेन्द्रित एवं संगठित बल का- राज्य की सत्ता का- प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक ऐसे पुराने समाज के लिए, जिसके गर्भ में नये समाज का अंकुर बढ़ रहा है, बल प्रयोग बच्चा जनने वाली दाई का काम करता है। बल प्रयोग स्वयं एक आर्थिक शक्ति है।
>
> "डब्ल्यू हॉविट ने, जिन्होंने ईसाई धर्म का विशेष रूप से अध्ययन किया है, ईसाई औपनिवेशिक व्यवस्था के बारे में लिखा है : "ईसाई कहलाने वाली नस्ल ने संसार के प्रत्येक इलाके में और हर ऐसी कौम पर, जिसे वह जीतने में सफल हुई है, जैसे बर्बर और भयानक अत्याचार किये हैं, वैसे अत्याचार पृथ्वी के किसी भी युग में किसी और नस्ल ने, वह चाहे जितनी खूंखार, जाहिल और दया तथा लज्जा से विहीन क्यों न रही हों, नहीं किये हैं।" हालैण्ड के औपनिवेशिक शासन का इतिहास- और ध्यान रहे कि हालैण्ड 17वीं शताब्दी का प्रमुख पूंजीवादी देश था-"विश्वासघात, घूसखोरी, हत्याकाण्ड और नीचता की एक अत्यंत असाधारण कहानी है।" हालैण्ड वाले जावा में गुलामों के रूप में इस्तेमाल करने के लिए इन्सानों की चोरी जिस तरह करते थे, उससे उनके तरीकों पर काफी प्रकाश पड़ता है। कुछ लोगों को इन्सानों को चुराने की विशेष शिक्षा दी जाती थी। चोर, दुभाषिये और बेचनेवाले इस व्यापार के मुख्य आढ़ती थे और देशी राजा मुख्य बेचने वाले थे। जिन युवक-युवतियों को चुराया जाता था, उनको जब तक वे दासों के समान काम करने लायक नहीं होते और जहाजों में भरकर नहीं भेजे जाते, तब तक सेल बीज के गुप्त कैदखानों में बंद करके रखा जाता था।... ... ...
>
> "जैसा कि सुविदित है, अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी का हिन्दुस्तान में राजनीतिक शासन तो था ही, इसके अलावा उसको चाय के व्यापार का, चीन के साथ सभी प्रकार का व्यापार करने का और यूरोप से माल लाने तथा यूरोप में माल ले जाने का एकाधिकार भी मिला हुआ था परंतु हिंदुस्तान के समुद्री किनारे के व्यापार और पूर्वी द्वीपों के पास्परिक व्यापार और

साथ ही हिंदुस्तान की अंदरूनी व्यापार पर भी कंपनी के ऊंचे कर्मचारियों का एकाधिकार था। नमक, अफीम, पान और अन्य मालों के व्यापार का एकाधिकार धन की अक्षय खान का काम करता था। इन चीजों के दाम खुद कम्पनी के कर्मचारी निश्चित करते थे और अभागे हिन्दुओं को इच्छानुसार लूटते थे। इस प्राइवेट व्यापार में गवर्नर जनरल भी भाग लेता था। उसके कृपापात्रों को इतनी अच्छी शर्तों पर ठेके मिल जाते थे कि वे कीमियागरों से अधिक होशियार होने के कारण, मिट्टी से सोना बनाया करते थे। चौबीस घंटे के अंदर कुकुरमत्तों की तरह ढेरों दौलत बटोर ली जाती थी; एक शिलिंग भी पेशगी के रूप में लगाना नहीं पड़ता था और आदिम संचय धड़ल्ले से चल निकलता था।... ... ... संसद के सामने पेश की गयी एक सूची के अनुसार 1757 से 1766 तक कम्पनी और उसके कर्मचारियों को हिन्दुस्तानियों से 60,00,000 पाउंड उपहारों के रूप में प्राप्त हुए थे। 1769 और 1770 के बीच अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान का सारा चावल खरीद लिया और उसे अत्यधिक ऊंचे दाम पाये बिना बेचने से इन्कार करके वहां अकाल पैदा कर दिया।

"आदिवासियों के साथ सबसे बुरा व्यवहार, जाहिर है, केवल निर्यात व्यापार के लिए लगाये गये बागानों वाले उपनिवेशों में किया जाता था- जैसे वेस्टइंडीज में -और मैक्सिको तथा हिन्दुस्तान जैसे धनी और घने बसे हुए देशों में भी, जो अंधाधुंध लूटे जा रहे थे। लेकिन जिनको सचमुच उपनिवेश कहा जा सकता था, उनमें भी आदिम संचय का ईसाई स्वरूप अक्षुण्ण था। प्राटेस्टेंट मत के उन गंभीर साधकों- न्यू इंग्लैण्ड के प्यूरिटनों- ने 1703 में अपनी एसेम्बली के कुछ अध्यादेशों के द्वारा अमेरिकी आदिवासियों को मारकर उनकी खोपड़ी की त्वचा लाने या उन्हें जिंदा पकड़ कर लाने के लिए प्रति आदिवासी 40 पाउंड पुरुस्कार की घोषणा की थी। 1720 में प्रति त्वचा 100 पाउंड पुरुस्कार का ऐलान किया गया था। 1744 में, जब मैस्साचुसेट्स-बे ने एक खास कबीले को विद्रोही घोषित किया, तो निम्नलिखित पुरुस्कारों की घोषणा की गयी; 12 वर्ष या उससे अधिक आयु के पुरुषों को मार डालने के लिए प्रति त्वचा 100 पाउंड (नयी मुद्रा में), पुरुषों को पकड़ लाने के लिए प्रति व्यक्ति 105 पाउंड, स्त्रियों और बच्चों को पकड़ लाने के लिए प्रति व्यक्ति 55 पाउंड, स्त्रियों और बच्चों को मार डालने के लिए प्रति त्वचा 50 पाउंड। (मार्क्स, औद्योगिक पूंजीपति की उत्पत्ति, पूंजी खण्ड 1, पृष्ठ 790-792)

उद्धरण से स्पष्ट है आदिम पूंजी संचय के लिए अफ्रीका के लोगों को गुलाम बना अमेरिका की सोने और चांदी की खानों में काम करवाया गया। अमेरिका की देशी आबादी का लगभग पूरी तरह सफाया कर दिया गया। सौ वर्षों से कुछ अधिक समय में मैक्सिको की 90%, पेरू की 95% आबादी साफ कर दी गयी। भारत सरीखे उपनिवेशों में व्यापार पर एकाधिकार, खूनी लूट के तौर तरीकों से पूंजी संचय किया गया। इस तरह अपने देश के भीतर से अधिक तबाही पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली ने अपने शुरुआती काल में दूसरे देशों में ढायी। पूंजी संचय के ये सब तौर तरीके देख कर ही कहा गया कि जब पूंजी संसार में आती है, तब उसके सिर से पैर तक प्रत्येक छिद्र से रक्त और गंदगी टपकती रहती है। प्रायः इतिहास के इस काले अध्याय को कुछ व्यापारियों-राजाओं की सनक कहकर बच निकला जाता है। पर वास्तव में इस काले अध्याय के दम पर ही तीव्र पूंजीवादी विकास, औद्योगिक क्रांति सम्भव हो सके।

इस तरह जिन यूरोपीय देशों में पूंजीवाद का पहले-पहले विकास हुआ उन्होंने बाकी दुनिया के देशों को ही गुलाम नहीं बनाया, अगर सम्भव हुआ तो उनके इन्सानों को भी गुलाम बना लिया। आदिम पूंजी संचय का रक्तरंजित इतिहास बताता है कि यूरोप के चन्द देशों के पूंजीवादी विकास की कितनी भारी कीमत शेष दुनिया को चुकानी पड़ी। यह कीमत थी अमेरिकी महाद्वीप के आदिवासियों की समूची आबादी का सफाया, अफ्रीकी महाद्वीप के लोगों को गुलामी प्रथा में धकेल देना व भारत-चीन सरीखे एशियाई देशों में लूट पाट, अकाल का साम्राज्य। आज इन बातों को पूंजीवादी चिन्तक याद नहीं करना चाहते पर यह हकीकत है कि आज भी अगर अमेरिका-यूरोप में काले लोगों के साथ भेदभाव होता है, अफ्रीकी देश विकास की प्रक्रिया में काफी पिछड़े हैं और भारत-चीन की विकसित सभ्यतायें गरीब देशों की श्रेणी में पहुंच गयीं तो इसके लिए आदिम पूंजी संचय व बाद के काल में पूंजीवादी देशों द्वारा ढायी तबाही एक प्रमुख कारक है।

तबाही की यह प्रक्रिया आज तक जारी है। यूरोप के पूंजीवादी देशों में जब औद्योगिक क्रांति हो गयी तो उपनिवेश तैयार माल का बाजार व कच्चे माल के स्रोत में तब्दील हो गये। उनकी चौतरफा लूट का क्रम जारी रहा। 20वीं सदी के अन्त में जब आधुनिक साम्राज्यवाद के युग की शुरुआत हुई तो साम्राज्यवादी देशों ने बाकी पूरी दुनिया का उपनिवेशों के रूप में आपस में बंटवारा पूरा कर लिया। साम्राज्यवाद के दौर में वित्तीय पूंजी का निर्यात, एकाधिकारी घरानों के एकाधिकार के साये में उपनिवेशों का शोषण जारी रहा। यहां तक कि आज जब साम्राज्यवाद को पीछे धकेलकर उपनिवेश-नवउपनिवेश के काल से आर्थिक नवउपनिवेशवाद के युग में पहुंचा दिया गया तब भी बहुर्राष्ट्रीय घराने, साम्राज्यवादी पूंजी गरीब मुल्कों का तरह-तरह से शोषण कर रही हैं। उनकी लूट की कार्यवाही बदले रूपों में आज भी जारी है।

यहां हम उन सभी युद्धों की चर्चा नहीं कर रहे हैं जो पूंजीवाद के शुरुआती दौर से दो विश्व युद्धों से होते हुए आज तक जारी हैं और जिन्होंने तबाही को, मौतों को इतने बड़े पैमाने पर पैदा किया कि सामंतों का रक्तपात फीका पड़ गया। इनकी अलग से आगे चर्चा की गयी है।

साम्राज्यवादी देशों द्वारा गरीब मुल्कों में तबाही ढाया जाना कैसे आज भी जारी है इसे अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा 20वीं सदी में गरीब मुल्कों के साथ किये गये सुलूक से समझा जा सकता है। अमेरिकी साम्राज्यवाद ने नव स्वाधीन हुए मुल्कों को अपने चंगुल में लाने के लिए, उन्हें अपने नवउपनिवेश में तब्दील करने के लिए एक से बढ़कर एक षड्यंत्र किये। गरीब मुल्कों की 'सहायता कार्यक्रम' के नाम पर वित्तीय पूंजी ने गरीब मुल्कों की अर्थव्यवस्था-राजनीति सबको प्रभावित करना चालू कर दिया। अक्सर ही 'सहायता' के नाम पर अमेरिका द्वारा दी जाने वाली मदद् ढेरों शर्तें गरीब मुल्कों पर थोपती हैं। इनमें इस सहायता राशि से अमेरिकी उत्पाद खरीदना भी

एक शर्त होती है। 'सहायता' के अलावा 'कर्ज', 'पूंजी निवेश' आदि के जरिये भी वित्तीय पूंजी गरीब मुल्कों में तबाही पैदा करती रही है। आर्थिक तौर तरीकों के अलावा अमेरिकी खुफिया एजेंसी CIA द्वारा विरोधियों की हत्यायें करने का पूरा इतिहास है। ये सब प्रयास आज भी जारी हैं। ब्राजील, वेनेजुएला आदि देशों में अमेरिकी साम्राज्यवादी अमेरिकापरस्त शासन कायम करने के लिए पूरा जोर लगाते रहे हैं। अपने हिसाब से न चलने वाले मुल्कों पर बमबारी, युद्ध थोपना भी अमेरिकी साम्राज्यवाद का महत्वपूर्ण तौर तरीका रहा है। इराक, अफगानिस्तान, लीबिया सरीखे देशों में यह आज भी जारी है।

साम्राज्यवादी; गरीब मुल्कों पर अपनी लूट को संस्थागत करने व अपने आपसी झगड़ों को हल करने के लिए समय-समय पर अलग-अलग मंच भी बनाते रहे हैं। विश्व बैंक, आई.एम.एफ. से लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ, डब्ल्यू.टी.ओ. ऐसे ही मंच रहे हैं।

लम्बे समय से पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के समर्थक उपनिवेशीकरण के लिए यह तर्क प्रस्तुत करते रहे हैं कि दरअसल 'सभ्य' पूंजीवादी देश असभ्य पिछड़े देशों को सभ्य बनाने, उन्हें विकसित करने, उनका भला करने के लिए हस्तक्षेप करते हैं, मदद करते हैं, पूंजी निवेश करते हैं। बीसवीं सदी में इसमें 'लोकतंत्र की स्थापना' का तर्क भी जुड़ गया। अमेरिकी साम्राज्यवादी इराक, अफगानिस्तान से लेकर पूर्व सोवियत संघ के देशों, लैटिन अमेरिकी देशों में 'लोकतंत्र' की स्थापना के तर्क से ही हस्तक्षेप करते रहे हैं। इनके तर्क आदिम पूंजी संचय के समय गुलामों के व्यापार से लेकर आदिवासी समूहों की हत्याओं तक को 'सभ्यता में प्रवेश' के नाम पर जायज ठहरा देते हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवादी 18वीं-19वीं सदी में दुनिया को सभ्य बना रहे थे तो अमेरिका 20वीं-21वीं सदी में यही कार्य कर रहा है। इन्हीं तर्कों के आधार पर ये साम्राज्यवादी अपने देशों की जनता से अपने लुटेरे चेहरे को छिपाने का काम करते हैं।

पिछली सदी में गैरसरकारी संस्थाओं का जाल खड़ा कर 'सहायता' कार्यक्रम चलाने का चलन तेजी से बढ़ा। हालत यहां तक पहुंच गयी कि अमेरिका का 'नेशनल एन्डावमेंट फॉर डेमोक्रेसी' सरीखा संगठन दुनियाभर की सरकारों पर लोकतंत्र की स्थापना का दबाव डाल अमेरिकी धौंस पट्टी में मदद करने लगा। ये गैर सरकारी संगठन भी साम्राज्यवादी प्रभुत्व कायम करने का महत्वपूर्ण जरिया बनने लगे। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के विस्तार में जहां 18वीं-19वीं सदी में ईसाई मिशनरियां मदद करती थीं तो 20वीं सदी में अमेरिकी साम्राज्यवाद के लिए यही काम उनके पालतू एन.जी.ओ. करने लगे।

पूंजीवादी-साम्राज्यवादी मुल्कों द्वारा पिछड़े देशों में ढायी जा रही तबाही पूंजीवादी व्यवस्था का आम चरित्र है। जो भी देश पूंजीवादी विकास में थोड़ा आगे बढ़ता है वो अपने से पिछड़े देश का अपनी पूंजी के हित में शोषण करने का प्रयास करने लगता है। 1776 में मुक्त हुआ अमेरिका आज पूरी दुनिया को अपने प्रभुत्व के साये में रखना चाहता है। भारतीय शासक एक तरफ साम्राज्यवाद से धौंसपट्टी सहते रहते हैं वहीं अपने से कमजोर नेपाल, बर्मा, श्रीलंका पर धौंसपट्टी, क्षेत्रीय दादागिरी जमाते रहते हैं। उनकी पूंजी अफ्रीका के देशों में लूट मचाती रहती है।

C. आर्थिक संकट

पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली में जहां उत्पादन का स्वरूप लगातार सामाजिक होता जाता है, वहीं हस्तगतकरण अभी भी व्यक्तिगत बना रहता है। इससे सामाजिक उत्पादन व व्यक्तिगत पूंजीवादी हस्तगतकरण का मूल अन्तरविरोध सामने आता है। अपनी बारी में यही अन्तरविरोध खुद को सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के अन्तरविरोध के रूप में प्रकट करता है। यही असंगति अलग-अलग कारखानों में उत्पादन के संगठित स्वरूप व पूरे समाज के पैमाने पर उत्पादन की अराजकता के अन्तरविरोध के रूप में प्रकट होती है।

पूंजीवादी उत्पादन की अराजकता हर पूंजीपति को उत्पादक शक्तियों के लगातार विकास की ओर ले जाती हैं। पूंजीपति के रूप में अपने अस्तित्व को बचाने की यह आवश्यक शर्त बन जाती है। परिणामस्वरूप बढ़ते उत्पादन को खपाने के लिए पूरी दुनिया का बाजार छान मारा जाता है। बाजार का प्रसार उत्पादन के प्रसार के साथ कदम नहीं मिला पाता। इस तरह दोनों में टकराव पैदा होने लगता है। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के तहत इस टकराव का कोई वास्तविक समाधान नहीं निकल सकता। यह अन्तरविरोध एक निश्चित व्यवधान के साथ बार-बार गम्भीर रूप धारण कर लेता है जो बारम्बार आर्थिक संकटों के रूप में सामने आता है।

आर्थिक संकट के दौरान बाजार माल से पटा होता है पर खरीददार गायब होते हैं। परिणामतः ढेर सारे कारखाने बंद हो जाते हैं। मजदूरों को जीविका के साधनों से इसलिए वंचित कर दिया जाता है क्योंकि उन्होंने जीविका के साधनों का अति उत्पादन कर डाला है। उत्पादक शक्तियों और उत्पादों के बड़े पैमाने पर विनाश के बाद एक समय बाद उत्पादन और विनिमय फिर गति पकड़ने लगता है। उत्पादन में फिर तेजी आने लगती है और इस तेजी के बाद फिर नया संकट रफ्तार को थाम लेता है।

दरअसल पूंजीवाद संकट दर संकट ही विकास करता है। 1825 में इंग्लैण्ड के आर्थिक संकट से लेकर 2008 से चल रहे वर्तमान संकट तक ये बारम्बार आते रहे हैं। संकट के दौरान बड़ी पूंजी तेजी से छोटी पूंजी को निगल लेती है और इस तरह पूंजीवादी संचय व पूंजी का संकेन्द्रण जारी रहता है।

पूंजीपतियों के बीच की स्वतंत्र होड़ ने उत्पादन के संकेन्द्रण को पैदा किया और इसी से आगे चलकर विकास की खास मंजिल में पहुंच इजारेदारियां पैदा हुई। इजारेदारी के पैदा होने के साथ ही उत्पादन के हर क्षेत्र में कुछ बड़े इजारेदार घराने ही नियंत्रण करने लगे। पूंजीवाद अपनी चरम अवस्था साम्राज्यवाद में पहुंच गया। इजारेदारियां जो खुली होड़ से पैदा हुई, इस खुली होड़ को खत्म नहीं करती, बल्कि उसके ऊपर और उसके साथ काम करती है और अनेक संघर्षों व झगड़ों को जन्म देती हैं।

पूंजीवाद के पहले के समाजों में भी संकट पैदा होते थे। युद्ध की तबाही, बाढ़, सूखा, आंधी, तूफान आदि प्राकृतिक आपदाओं के चलते, उत्पादन काफी गिर जाता था। लाखों लोग भूख या प्लेग जैसी महामारियों से मर जाते थे। पर उस समय के संकटों का मुख्य कारण अपर्याप्त खाद्यान्न उत्पादन होता था। पर पूंजीवादी आर्थिक संकटों की मुख्य विशेषता अपर्याप्त उत्पादन नहीं बल्कि अति उत्पादन है। भारी मात्रा में तैयार माल बिक नहीं पाता, फैक्टरियां बंद हो जाती हैं, बैंकों का कारोबार ठप हो जाता है, बेरोजगारी तेजी से बढ़ने लगती है, उत्पादक शक्तियों को भारी नुकसान पहुंचता है और पूरी अर्थव्यवस्था लकवाग्रस्त और अस्त-व्यस्त हो जाती है- ये पूंजीवादी आर्थिक संकटों के प्रमुख लक्षण हैं।

पूंजीवादी आर्थिक संकट अति उत्पादन के संकट होते हैं। पर यह अति उत्पादन निरपेक्ष अति उत्पादन नहीं होता। इसका मतलब यह नहीं होता कि उत्पादन सभी लोगों की जरूरतों से ज्यादा हो गया है। बल्कि सामाजिक उत्पादन का आधिक्य केवल लोगों की क्रयशक्ति के सापेक्ष होता है। आर्थिक संकटों के दौर में मांग की कमी के चलते, पूंजीपतियों के गोदाम मालों से भरे रहते हैं। यहां तक कि विभिन्न माल पड़े-पड़े सड़ जाते हैं या उन्हें जान-बूझकर नष्ट किया जाता है। दूसरी ओर व्यापक मेहनतकश समुदाय बुनियादी जरूरतें खरीदने की भी क्षमता से वंचित हो जाता है और भुखमरी से जूझता रहता है।

पूंजीवादी समाज में आथिर्क संकट अपरिहार्य हैं। पूंजीवाद का बुनियादी अंतरविरोध ही आर्थिक संकटों को जन्म देता है। उत्पादन की सामाजिक प्रकृति व निजी स्वामित्व का बुनियादी अन्तरविरोध समाज को संकट की दिशा में ले जाता है। सामाजिक उत्पादन के व्यक्तिगत हस्तगतकरण के चलते अलग-अलग पूंजीपति निरंतर परस्पर प्रतियोगिता में रहते हैं। अधिक मुनाफे की तलाश में व प्रतियोगिता में टिके रहने के लिए वे अपने उत्पादन का पैमाना बढ़ाते जाते हैं, नई-नई तकनीकें अपनाते जाते हैं। मुनाफे को बढ़ाने के लिए वे मजदूरों को कम से कम मजदूरी देकर अधिक से अधिक अतिरिक्त मूल्य हासिल करना चाहते हैं। इस तरह एक ओर तो उत्पादन का जबर्दस्त विस्तार होता है दूसरी ओर मेहनतकश जनता की क्रयशक्ति सापेक्षिक रूप से गिरती जाती है। यह अन्तरविरोध अति उत्पादन के आर्थिक संकट तक ले जाता है।

इसी तरह पूंजीवादी उत्पादन अलग-अलग कारखानों में संगठित उत्पादन व समाज के पैमाने पर उत्पादन में अराजकता के अन्तरविरोध को भी पैदा करता है। उत्पादन के सामाजिक होते जाने के साथ उत्पादन सेक्टरों के बीच और विभिन्न उद्यमों के बीच के सम्बन्ध और परस्पर निर्भरता बढ़ती जाती है। अब सामाजिक उत्पादन जारी रखने के लिए कोई एकीकृत योजना आवश्यक होती जाती है। लेकिन निजी स्वामित्व के तहत पूंजीवादी उत्पादन पूरे समाज के विभिन्न स्वायत्त पूंजीवादी उद्यमों में बंटा होता है। ऐसे में एक पूंजीपति के तहत तो कारखाने स्तर पर उत्पादन संगठित होता है पर पूरे समाज के नजरिये से अलग-अलग पूंजीपति के उद्यम क्या और कितना उत्पादित करते हैं यह उनका निजी मामला होता है इसलिए समाज के पैमाने पर उत्पादन अराजक स्थितियों में जारी रहता है। उत्पादन की यह अराजकता अति उत्पादन के आर्थिक संकट की ओर ले जाती हैं।

आर्थिक संकटों के उपरोक्त कारणों को स्वीकारने से बुर्जुआ अर्थशास्त्री इन्कार करते रहे हैं। वे यह मानने से इन्कार करते हैं कि पूंजीवादी समाज में आर्थिक संकट अपरिहार्य हैं। हर संकट के समय वे कुछ तात्कालिक कारणों को संकट का मूल कारण घोषित कर उसके इर्द-गिर्द संकट से निपटने की परियोजना पेश करने लगते हैं। संकट दूर होते ही वे घोषणा करने लगते हैं कि संकटों से मुक्ति पा ली गयी है पर खुशी का जश्न अभी जारी ही होता है कि नया संकट दस्तक देने लगता है। कुछ कुतर्क करते हैं कि संकट 'अल्प उपभोग' के चलते पैदा हुआ है। और 'उपभोग उत्प्रेरण' से संकट दूर हो जायेगा। वे यह भूल जाते हैं कि अल्प उपभोग तो मेहनतकश समुदाय वर्गीय समाज पैदा होने के वक्त से ही कर रहा है ऐसा वो अपनी इच्छा से नहीं मजबूरीवश करता है। केवल पूंजीवाद में ही अति उत्पादन के चलते इस अल्प उपभोग को दूर करने का भौतिक आधार उत्पन्न होता है। पर पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली मेहनतकश समुदाय को लगातार कंगाली में ढकेल इसे सम्भव नहीं होने देती।

आर्थिक संकट के दौरान न केवल पूंजीवाद के सभी अन्तरविरोध तीखे हो जाते हैं बल्कि पूंजीवादी राज्य भी खुलकर पूंजीपतियों की रक्षा में आ डटता है। मेहनतकशों पर हमले तेज कर वह पूंजीपतियों के गिरते मुनाफे की भरपाई करने लगता है। वह खुलकर प्रदर्शित करने लगता है कि वो पूंजी द्वारा मजदूर वर्ग पर तानाशाही का उपकरण है।

पूंजीवादी उत्पादन की विकास प्रक्रिया में संकट बार-बार उभरते हैं लेकिन हर संकट पहले के संकट का मात्र दोहराव नहीं होता। उनके आने का अन्तराल लगातार घटता जाता है और संकट की गम्भीरता लगातार बढ़ती जाती है।

19वीं सदी में 1825 में इंग्लैण्ड के बड़े पैमाने के आर्थिक संकट से शुरु होकर 1836, 1848, 1857, 1867 में आर्थिक संकटों की पुनरावृत्ति हुई। औसतन ये हर दस वर्ष में पैदा हुए। 20वीं सदी में साम्राज्यवाद के दौर में भी संकटों का क्रम जारी रहा। इस दौरान दुनिया ने 1929 से शुरु वैश्विक मंदी की विभीषिका को भी झेला जो अभी तक के सभी संकटों से गम्भीर थी। वर्तमान समय में भी 2008 से जारी विश्व आर्थिक संकट समाप्त होने का नाम नहीं ले रहा है और भारी तबाही पैदा कर रहा है।

29 अक्टूबर 1929 को अमेरिकी शेयर बाजार में आयी भारी गिरावट से विश्व आर्थिक मंदी की शुरुआत हुई। 1929 से 1932 के बीच दुनियाभर का जी.डी.पी. 15% तक गिर गया। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार 50% गिर गया। अमेरिका में बेरोजगारी दर 25% तक जा पहुंची तो कुछ अन्य देशों में इसने 33% का आंकड़ा छू लिया। इस काल (1929–1932) में औद्योगिक उत्पादन अमेरिका में 46%, ग्रेट ब्रिटन में 23%, फ्रांस में 24%, जर्मनी में 41% तक गिर गया। थोक कीमतें अमेरिका में 32%, ग्रेट ब्रिटेन में 33%, फ्रांस में 34%, जर्मनी में 29% गिर गयी। विदेशी व्यापार में अमेरिका में 70%, ग्रेट ब्रिटेन में 60%, फ्रांस में 54% व जर्मनी में 61% की गिरावट आयी। बेरोजगारी अमेरिका में 607%, ग्रेट ब्रिटेन में 129%, फ्रांस में 214%, जर्मनी में 232% तक बढ़ गयी। (स्रोत : विकीपीडिया)

कुछ ऐसी ही तस्वीर मौजूदा समय में 2008 से जारी संकट में सामने आ रही है। अमेरिका के सब प्राइम संकट से शुरु होकर शीघ्र ही यह बैंकिंग-बीमा क्षेत्र व उत्पादन के क्षेत्र में फैल गया। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में तेज गिरावट और बेरोजगारी दर में वृद्धि सामने आने लगी। यह संकट शीघ्र ही यूरोप व बाकी दुनिया के उत्पादन वितरण को अपनी चपेट में लेने लगा। मौजूदा समय में संकट दक्षिणी यूरोप के देशों में घनीभूत है। संकट से निकलने की साम्राज्यवादी संस्थाओं की हर भविष्यवाणी बेकार साबित हो रही है। एक-दो साल विकास दर कुछ सुधरती है तो तीसरे साल फिर गोते लगाने लगती है।

1929 की महामंदी ने मजदूरों-मेहनतकशों से लकर मध्यमवर्गीय लोगों के जीवन को बुरी तरह प्रभावित किया था। परिवार, बच्चे, वैवाहिक जीवन, सामाजिक जीवन सब महामंदी के साये में प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके थे। लोगों का जीवन स्तर बुरी तरह गिर गया था। औद्योगिक देशों में हर चौथा काम करने वाला व्यक्ति 1930 के दशक की शुरुआत में बेरोजगार था।

अमेरिका में बैंकों के तबाह होने से मेहनतकश लोग अपनी बचतें खो चुके थे। वे इस उम्मीद में बैंकों के बाहर खड़े रहते कि बैंक उनके पैसे लौटायेगा। जब यह इन्तजार लम्बा हो जाता तो वे बैंकों पर पत्थर बरसाने लगते। 1934 में अमेरिकी मैदानों में पड़े भयंकर सूखे और धूल की आंधी (Dust Storm) ने खेती को व ग्रामीण जीवन को चौपट कर दिया। करीब 25 लाख लोग इसके चलते कैलिफोर्निया सरीखी जगहों पर काम की तलाश में पहुंच गये।

अमेरिकी लोगों की रोटी के लिए लम्बी-लम्बी लाइनों की तस्वीरें जीवन की बदहाली को खुद ही बयां कर देती है। अमेरिकी शहरों-देहातों सबका जीवन अस्त-व्यस्त हो चुका था। लोग काम की तलाश में लगातार एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकते रहते। ट्रेनों में भीड़ इतनी बढ़ गयी थी कि लोग लटक कर भी एक जगह से दूसरी जगह की यात्रायें करते। तत्कालीन राष्ट्रपति हूबर के नाम पर आश्रय हीन लोगों के लिए सड़कों के किनारे-किनारे नयी झुग्गियां हूबरविला नाम से मशहूर हो चुकी थीं। इन झुग्गियों में सरकारी राहत बंटते वक्त अक्सर लम्बी-लम्बी लाईनें लग जाती थीं।

मंदी का पारिवारिक जीवन पर असर बहुत स्पष्ट था। बेरोजगार अमेरिकी पुरुष अपने परिवार का पेट पालने में असमर्थ होते जा रहे थे। इसके चलते महिलायें बेहद कम मजदूरी पर काम पर जाने लगीं। महिलाओं का काम पर जाना अमेरिकी समाज में अभी अच्छा नहीं माना जाता था पर जीवन की बदहाली ने उन्हें काम पर जाने व परिवार चलाने में योगदान को मजबूर किया। यहां तक कि छोटे-छोटे बच्चे भी पार्ट टाइम काम करने लगे। अक्सर परिवार के भीतर पुरुष के बेरोजगार होने पर महिला-बच्चे ही रोटी जुटाने में लगे रहते थे। इस स्थिति ने पुरुषों के पुरुष होने के अहम को ठेस पहुंचायी। उनका पुरुष अहम यह सहन नहीं कर सका कि वे महिलाओं की कमायी रोटी खायें। परिणामतः वे या तो अवसादग्रस्त हो नशाखोरी, अपराध की ओर बढ़ गये, या कई लांछन से बचने के लिए परिवार छोड़ काम की तलाश में दूर चले गये, कईयों ने आत्महत्यायें कर ली। मंदी के पूरे काल में आत्महत्याओं की दर में काफी वृद्धि देखी गयी साथ ही अपराधों में, लूटमार में भी बढ़ोत्तरी हुई।

अमेरिकी परिवार के भीतर कंगाली का आलम यह था कि लोगों ने बच्चे पैदा करने इसलिए कम कर दिए कि नये आने वाले प्राणी को जिलाने के लिए उन पर संसाधन नहीं थे। गर्भ निरोधक उपायों की मांग तेजी से बढ़ गयी। ढेरों नये जोड़ों ने अपने विवाह इसलिए टाल दिये कि वैवाहिक जीवन शुरु करने के लिए उनके पास पर्याप्त साधन नहीं थे। तलाकों की तादाद में हालांकि कमी देखी गयी पर यह कमी इसलिए नहीं हुई थी कि परिवार में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध बेहतर हो गये थे बल्कि इसलिए हुई कि लोगों के पास वकील को देने तक के पैसे नहीं थे। परिवार के भीतर अभाव की स्थिति में स्त्री-पुरुषों के बीच कलह-मारपीट-गाली गलौच लगातार बढ़ती पर था। अक्सर बेरोजगार पुरुष काम करने जाती अपनी पत्नी के चरित्र पर सवाल उठा तरह-तरह की कलह पैदा करते रहते थे।

स्कूलों में बच्चों की उपस्थिति घटने लगी थी। अब बच्चे काम पर जाने लगे थे। हां, उन स्कूलों में जहां कुछ राहत भी बंटती थी, तमाम युवा इसलिए पड़े रहते थे कि बाहर काम मिलने की कोई संभावना नहीं थी।

लड़कियों-महिलाओं की एक ठीक-ठाक तादाद इस समय रोटी की तलाश में वेश्यावृत्ति करने को मजबूर हो गयी थी। अक्सर ही अगले वक्त का भोजन जुटाना ही प्रमुख लक्ष्य होता था।

अमेरिकी समाज में काले लोगों को मंदी की मार कहीं अधिक झेलनी पड़ी। मंदी के शीर्ष के वक्त लगभग हर दूसरा काला व्यक्ति बेरोजगार था। मंदी के चलते गोरों का एक बड़ा हिस्सा काले लोगों द्वारा किये जाने वाले निकृष्ट समझे जाने वाले कामों को अपनाने की ओर गया। इससे काले लोगों के लिए उपलब्ध रोजगार में और कमी आयी। गोरे-कालों के बीच परस्पर भेदभाव अभाव की इस स्थिति में और बढ़ गया।

मकानों का किराया न चुका पाने के चलते बड़ी संख्या में लोग अपने परिवार सहित सड़कों पर आ गये थे। कुछ मध्यम आय हासिल करते रहे लोगों ने तो अपनी कार को ही अपना घर बना लिया। वे एक-एक कर सामान बेच गुजारा करते रहे और काम की तलाश में भटकते रहे और अंत में कार का टायर तक बेच रोटी जुटाने को मजबूर हुए। सड़कों के किनारे तरह-तरह की आकृतियों वाली टूटे-फूटे घरों की लम्बी लाईनें लग गयीं जो तरह-तरह के कबाड़ से खड़ी की गयी थी। अभाव के चलते अपना घर, जमीनें बेचने वालों की तादाद लगातार बढ़ती जा रही थी। मंदी के चलते हालांकि रोटी समेत तमाम चीजों के दाम काफी गिर गये थे पर उन्हें खरीदने के लिए लोगों के पास पैसा नहीं था।

एक ओर अमेरिकी मेहनतकश इस बदहाली के शिकार थे तो दूसरी ओर चीजों की कीमत और न गिरे इसके लिए अमेरिकी पूंजीपति तैयार मालों खाद्यान्नों को समुद्र में फेंक रहे थे या बर्बाद कर दे रहे थे। भूखे मरते लोग और समुद्र में फेंके जाते भोजन का विरोधाभास मेहनतकशों की पूंजीवाद से नफरत को बढ़ा रहा था।

अमेरिका सरीखे हालात ही बाकी देशों के भी थे। यूनाइटेड किंग्डम में 1932 में भूखे लोगों के मार्च आयोजित होने लगे थे। भूखों की इस भीड़ से भय खाकर सरकार ने लेबर कैम्प बनाये जहां बेहद बुरी दशाओं में लोगों को महज जिन्दा रहने लायक देकर काम कराया गया।

विकसित साम्राज्यवादी देशों के पूंजीपतियों के गिरते मुनाफे की भरपाई के लिए उपनिवेशों-अर्द्ध उपनिवेशों की लूट-खसोट इस दौरान बढ़ गयी और मंदी के कहीं अधिक भयंकर परिणाम यहां की मेहनतकश अवाम को झेलने पड़े।

जहां 1929 की मंदी के कारणों के तौर पर बुर्जुआ अर्थशास्त्री कीन्स यह सुझा रहे थे कि लोगों की अर्थव्यवस्था में भरोसे की कमी के कारण उनका उपभोग स्तर गिर गया है। संकट की शुरुआत के बाद निवेश और मांग दोनों में कमी आ गयी है। वहीं मुद्रावादी अर्थशास्त्री अमेरिकी फेडरल रिजर्व द्वारा आवश्यक मुद्रा आपूर्ति न करने को संकट का कारण बता रहे थे। इसी तरह मौजूदा संकट के वक्त बुर्जुआ अर्थशास्त्री फिर से कुछ ऐसे ही कारण गिना रहे हैं। कुछ कल्याणकारी राज्य की वापसी कर मांग बढ़ाने के कीन्स के नुस्खे सुझा रहे हैं तो कुछ ब्याज दर लगातार गिरा निवेश प्रोत्साहन के टोटके सुझा रहे हैं। कुछ वित्तीय पूंजी के परजीवी कारोबार डेरीवेटिव, शेडो बैंकिंग, सट्टेबाजी आदि पर नियंत्रण की बात कर रहे हैं। दरअसल; बुर्जुआ अर्थशास्त्र संकट के मूल कारणों के बजाय ऊपरी लक्षणों को ही कारण समझता रहा है। मूल कारण पर वह जा भी नहीं सकता क्योंकि तब उसे मानना पड़ेगा कि पूंजीवाद में संकटों का कोई हल नहीं है। इसी तरह वर्तमान दौर के संकट जो पूंजीवाद की आम गति के साथ 3-4 दशकों के उदारीकरण-वैश्वीकरण की नीतियों का परिणाम है, को समझने में वे असफल रहते हैं। वे नियंत्रणकारी उपाय लागू करने के सुझाव देते हुए भूल जाते हैं कि वित्तीय पूंजी के हितों में कार्यरत सरकारें भला कैसे और क्यों उस पर नियंत्रण लगा सकती हैं।

ये संकट जहां पूंजीपतियों के लिए मुनाफे की गिरती के रूप में सामने आते हैं वहीं मजदूरों-मेहनतकशों के लिए ये जीवन का संकट खड़ा कर देते हैं। बेकारी, भुखमरी की शिकार आबादी के लिए दो वक्त की रोटी जुटाना मुश्किल हो जाता है। सरकारों द्वारा उन पर बोले जाने वाले कटौती कार्यक्रम के हमले मौजूदा संकट में जीवन को और दूभर बना रहे हैं। अपनी बारी में ये हालात पूंजी व श्रम के अन्तरविरोध को और गहराते हैं और मजदूरों को पूंजी की सत्ता खत्म करने की ओर भी बढ़ा सकते हैं।

d. फासीवाद

1920-30 के दशक में यूरोप के इटली, जर्मनी, स्पेन सरीखे देशों में फासीवाद के रूप में नग्न पूंजीवादी तानाशाहियों का उदय हुआ। बुर्जुआ जनवाद का गला घोंटते हुए इन देशों में निरंकुश फासीवादी तानाशाहियां कायम कर ली गयीं।

फासीवाद पूंजीपति वर्ग के सबसे प्रतिक्रियावादी हिस्से की नग्न तानाशाही है। अंधराष्ट्रवाद, नस्लवाद, सैन्यवाद से लैस, जनवाद विरोधी फासीवाद ने अपनी चरम अभिव्यक्ति जर्मनी में हिटलर के शासन में पायी। फासीवाद उन देशों में आसानी से जड़ें जमा सका जहां मजदूर वर्ग की क्रांति का खतरा अधिक स्पष्ट था। फासीवाद ने मार्क्सवाद विरोधी विचारधारा के रूप में खुद को उद्घोषित करते हुए सर्वहारा क्रांति से पूंजीवाद को बचाने वाले के रूप में खुद को पेश किया। जर्मनी-जापान की फासीवादी सत्तायें दुनिया को दूसरे विश्वयुद्ध की ओर ले गयीं। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान फासीवाद को सोवियत संघ ने भारी कुर्बानी देकर शिकस्त दी।

दूसरे विश्युद्ध के दौरान फासीवाद को भले ही शिकस्त दे दी गयी हो पर उसके फिर से सिर उठाने वे अपना क्रूर शासन करने की संभावनायें बनी रहीं। जिन कारणों के चलते वह 1920-30 के दशक में पैदा हुआ, साम्राज्यवादी-पूंजीवादी दुनिया में ये कारण फिर कभी भी पैदा हो सकते थे। 1970 के दशक में जब साम्राज्यवादी व्यवस्था का संकट फिर गहराना शुरू हुआ तो दुनियाभर में नवफासीवादी ताकतें फिर से सिर उठाने लगीं।

इस तरह फासीवाद कोई 1920-30 के दशक की आकस्मिक घटना नहीं थी। यह साम्राज्यवाद के दौर में पूंजीपति वर्ग की नीति का ही एक हिस्सा है। पूंजीपति वर्ग यह नीति फिर अपना सकता है। फासीवाद पूंजीवादी शासन की सबसे क्रूर गैरजनवादी प्रणाली है।

1920-30 के दशक में फासीवाद ने यूरोप के कई देशों पर सत्ता पर पहुंचने के साथ दुनियाभर में अमेरिका से लेकर लैटिन अमेरिका तक अपने पैर फैलाये। सत्ता पर पहुंचने के बाद फासीवादी ताकतों ने सभी जनवादी अधिकारों को कुचलते हुए नग्न तानाशाही कायम की। उनकी इस तानाशाही का निशाना सबसे पहले कम्युनिस्ट बने। बड़े पैमाने पर इटली-जर्मनी में कम्युनिस्टों का फासीवादियों ने कत्लेआम किया। राष्ट्रीय गौरव का नारा उछाल फासीवादियों ने एक जनान्दोलन की शक्ल में अपना आधार फैलाया। सत्ता पर पहुंचने के बाद उन्होंने अन्य लोगों का भी दमन करना शुरु कर दिया। जर्मनी में यहूदियों के दमन के लिए लेबर कैम्पों व गैस चैम्बरों ने क्रूरता की सारी हदें पार कर दीं।

फासीवादियों ने अपने देश के भीतर ही कहर नहीं ढाया बल्कि उसने अपने देश की साम्राज्यवादी पूंजी के हित मे दूसरे देशों पर एक के बाद एक हमले कर दुनिया को विश्वयुद्ध तक पहुंचाया। दुनियाभर के देशों में हिटलर का पांचवा कालम जर्मन सेनाओं के आक्रमण से पहले ही खड़ा हो जाता था।

दूसरे विश्वयुद्ध के पूर्व फासीवाद से लड़ने में सबसे अधिक दिलचस्पी समाजवादी सोवियत संघ ने ही दिखलायी। ब्रिटेन-फ्रांस-अमेरिका जैसी ताकतें हमेशा इस कोशिश में लगे रहे कि जर्मनी व सोवियत संघ आपस में भिड़ कर एक-दूसरे को तबाह

कर दें। ताकि वे दोनों पर नियंत्रण कर सकें। स्पष्ट है कि समाजवाद को हराने के लिए इन ताकतों को फासीवाद के साथ समझौते करने, उसे हथियार सप्लाई करने से भी गुरेज नहीं था।

अंततः द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान फासीवाद को शिकस्त सोवियत समाजवाद के हाथों ही मिली। हालांकि सोवियत संघ को भारी नुकसान उठाना पड़ा।

हिटलर के नाजीवाद ने दमन-अत्याचार-हत्याओं का जो कहर मानवता पर बरपा किया वह ही फासीवादियों के मानवता विरोधी चरित्र को स्थापित करने के लिए पर्याप्त है। पूंजी अपने मुनाफे के लिए अगर एक जमाने में आदिम पूंजी संचय की क्रूरता पैदा कर सकती है तो आज भी उसका चरित्र कहीं से भी बदला नहीं है। आज भी वह किसी हिटलर को गद्दी सौंप नग्न कत्लेआम मचा सकती है।

हिटलर के फासीवादी शासन द्वारा ढाये जुल्म अभूतपूर्व थे। इसने मजदूरों-कम्युनिस्टों को तो अपने निशाने पर लिया ही साथ ही साथ जर्मन नस्ल की शुद्धता के नाम पर यहूदियों की भारी आबादी को साफ कर डालने का काला कारनामा भी किया। इसके लिए बनाये गये लेबर कैम्प और गैस चैम्बर क्रूरता के प्रतीक बन चुके हैं। इन्हीं में एक गैस चैम्बर आस्टविट्ज-बिरकेनाउ में ढायी गयी क्रूरता से फासीवाद के चरित्र की एक झलक मिल जाती है।

ऑस्ट्विट्ज-बिरकेनाउ महाविध्वंस (Holocaust) के दौरान यूरोपीय यहूदियों को मारने वाला सबसे बड़ा केन्द्र बन गया था। सितम्बर, 1941 के 850 कुपोषित और बीमार कैदियों की एक प्रयोगात्मक गैस-हत्या के बाद सामूहिक हत्या दिन प्रति दिन का नियम बन गयी थी। कुछ आंकलनों के अनुसार यहां 30 लाख लोगों की संख्या तक को अंततः गैस-हत्या, भूख-बीमारी द्वारा, गोली मार कर या जलाकर मौत तक पहुंचाया गया।

मरने वाले 10 लोगों में से 9 यहूदी होते थे। उनके अलावा जिप्सियों, सोवियत युद्धबंदियों और सभी राष्ट्रीयताओं के बंदियों को गैस चैम्बर में मारा गया। 1944 में 14 मई से 8 जुलाई के बीच 148 ट्रेनों में 4,37,402 हंगरीवासी यहूदियों को ऑस्ट्विट्ज पहुंचाया गया। यह संभवतः महाविध्वंस के दौरान एक बार में आबादी का सबसे बड़ा प्रत्यर्पण था।

ऑस्ट्विट्ज में प्रायः पहुंचते ही बच्चों को मार दिया जाता था। कैम्प में पैदा होने वाले बच्चों को सामान्यतया उसी स्थान पर मार दिया जाता था। युद्ध का अंत आते-आते खर्च कटौती और गैस बचाने के लिए बच्चों को सीधे भट्ठियों में या खुले जलते गढ्ढों में झोंक दिया जाता था।

बड़े और बच्चे समान रूप से मांसपेशी और वसा रहित कंकाल के ढांचे होते थे। उनकी चमड़ी पतली परत जैसी होती थी जिसके घाव में से उनका कंकाल झांकता रहता था। मुंह के घाव जबड़ों को खोखला कर देते थे और गाल कैंसर के रोगियों की तरह फट जाते थे। कई सप्ताह तक चलने वाले दस्त उनके प्रतिरोधी क्षमता से रिक्त शरीर को तब तक गलाते रहते थे जब तक कि सब समाप्त न हो जाए।

तथाकथित कैम्प के डॉक्टर, खासकर कुख्यात जोसेफ मैंगेल, यहूदी बच्चों जिप्सी बच्चों और कई अन्य को यातना देते थे और तमाम तरह की पीड़ा देते थे। मरीजों को गैस चैम्बर में डाला जाता था, उन पर दवाओं का परीक्षण किया जाता था, बंध्याकरण किया जाता था, ठंड से मारा जाता था, और कई अन्य तरह के चोटों से गुजारा जाता था।

एक बार एक मां ने, जो अपने 13 साल की बच्ची से अलग नहीं किया जाना चाहती थी। एक सुरक्षाकर्मी को दांत से काटा और चेहरे को खरोंच दिया। मैंगेल ने अपने बंदूक से मां और बच्ची दोनों को मार दिया। मैंगेल ने उस खेप में आए हुए समस्त लोगों को गैस चैम्बर में डलवा दिया जबकि पहले उनको काम कराने के लिए चुना गया था।

आस्ट्विट्ज में मैंगेल ने जुड़वा बच्चों पर कई सारे अध्ययन किए और प्रयोग समाप्त होने के बाद अक्सर इन बच्चों को मार दिया जाता था और उनके शव का विच्छेदन किया जाता था। जुड़वा बच्चों में से प्रत्येक का वह तुलना के लिए चित्र बनाता था। जुड़वा बच्चों खासकर प्रतिरूपी जुड़वा बच्चों का खून निकालने को लेकर तो पूरा ही पागल रहता था। कुछ ही बच्चे जीवित रह पाते थे।

मैंगेल ने एक बार 14 जोड़े जिप्सी जुड़वा बच्चों को एक साथ हृदय में क्लोरोफोर्म का इंजेक्शन देकर मारा और शव विच्छेदन के दौरान बड़े ध्यानपूर्वक उनके एक-एक अंगों का अध्ययन किया।

मैंगेल ने एक ऑपरेशन के दौरान दो जिप्सी बच्चों को आपस में जोड़कर आपस में जुड़े जुड़वा बच्चों जैसा बनाने की कोशिश की। जहां पर उनकी हाथ की नसों को काटकर जोड़ा गया था, वहां गम्भीर संक्रमण हो गया। अक्सर मैंगेल बच्चों की आंखों का रंग बदलने के लिए उनकी आंखों में सुई से रसायनों को डालता था। कब्रगाह के पास ही मैंगेल का विशेष पैथोलोजी प्रयोगशाला था। वह बगैर सुन्न करने वाली दवाओं का इस्तेमाल किए प्रयोगात्मक ऑपरेशन करता था, जुड़वा बच्चों का खून एक-दूसरे के शरीर में डालता था, तन्हाई की सहनशीलता और विभिन्न उद्दीपनों की प्रतिक्रिया का परीक्षण करता था। वह घातक जीवाणुओं की सुई देता था, लिंग बदलाव वाले ऑपरेशन करता था, अंगों और भुजाओं को काटता था, सगे सम्बन्धियों के द्वारा गर्भधारण करवाता था।

फासीवाद साम्राज्यवाद के दौर में एकाधिकारी पूंजी के ही शासन का एक रूप है। यह रूप अपनाने की ओर पूंजीपति वर्ग तब बढ़ता है जब बहु पार्टी आधारित संसदीय प्रणाली उसके हितों को साधने में अक्षम साबित हो रही हो, मजदूर वर्ग की क्रांति का खतरा आसन्न हो और अर्थव्यवस्था संकटग्रस्त हो। ऐसी परिस्थिति में फासीवादी संगठनों को सत्ता पर पहुंचा साम्राज्यवादी पूंजी का सबसे प्रतिक्रियावादी हिस्सा अपनी नग्न तानाशाही कायम करता है। सत्ता पर पहुंच फासीवादी ताकतें मजदूर वर्ग पर हमला बोलती हैं, उनके संगठन नष्ट करती हैं। अंधराष्ट्रवाद, राष्ट्रीय गौरव की बातें कर तेजी से सैन्यीकरण की ओर बढ़ती है। एक पार्टी शासन कायम करती हैं

व उसके जरिये बुर्जुआ वर्ग के अन्य हिस्सों का भी दमन करती है। परिस्थितियां पैदा होने पर पूंजी फासीवादी शासन की ओर बढ़ सके इसके लिए फासीवादी संगठनों को एक सुरक्षा पंक्ति के तहत पूंजीवाद में पनपने व बढ़ने की छूट दी जाती है।

आज एक बार फिर से दुनियाभर में गहराते आर्थिक संकट के बीच नवफासीवादी ताकतें अपनी ताकत बढ़ा रही हैं। वैसे 1970 के संकट से ही इन्होंने अपने पैर पसारने शुरु कर दिये थे पर आज इनका खतरा कहीं अधिक स्पष्ट है। ढेरों देशों में ये प्रमुख पार्टियों के रूप में शामिल हो चुके हैं। भारत में हिन्दू फासीवादी पार्टी तो सत्ता पर भी काबिज हो चुकी है और तेजी से अपने एजेण्डे पर आगे बढ़ रही है। फ्रांस-अमेरिका में भी फासीवादी तत्व मजबूत स्थिति में हैं।

फासीवाद को परिभाषित करते हुए संसदीय लोकतंत्र के झण्डाबरदार उदार बुर्जुआ बुद्धिजीवी इसे पूंजीवाद से परायी चीज के रूप में पेश करते हैं। वे कुछ इस तरह से बात करते हैं कि समाजवाद और फासीवाद दोनों जनवाद विरोधी व्यवस्थायें हैं, कि दोनों सर्वसत्तावादी व्यवस्थायें हैं। ऐसा कहते हुए वे एक तीर से दो निशाने साधने की कोशिश करते हैं पहला समाजवाद को गलत साबित करने के लिए वे उसकी तुलना फासीवाद से करने लगते हैं। स्तालिन व हिटलर को एक श्रेणी में खड़ा करने लगते हैं दूसरा वे यह छुपा जाते हैं कि फासीवाद पूंजीवादी शासन का ही एक रूप है। इस तरह फासीवाद को पूंजीवाद के लिए परायी चीज बता वे पूंजीवाद की रक्षा करते हैं।

उदार बुर्जुआ की ये बातें कुछ मध्यम वर्गीय लोगों को ही भ्रम में डाल सकती हैं। मजदूर वर्ग वास्तविकता समझता है कि समाजवाद व फासीवाद केवल बहुत जुदा-जुदा बल्कि एक-दूसरे की विरोधी शासन व्यवस्थायें हैं। समाजवाद मजदूर वर्ग का शासन है तो फासीवाद पूंजीपति वर्ग की क्रूर तानाशाही है। समाजवाद जहां महत्तम जनवादी व्यवस्था है वहीं फासीवाद जनवाद रहित व्यवस्था है।

पूंजीवाद को फासीवाद की ओर बढ़ने से रोकने का काम अतीत में भी मजदूर वर्ग व उसकी कम्युनिस्ट पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका में हुआ था और वर्तमान समय में भी फासीवाद की बढ़ती को मजदूर वर्ग ही रोकेगा। उदार बुर्जुआ दृष्टिकोण से फासीवाद से नहीं निपटा जा सकता, उसे तो समाजवाद के नजरिये से ही परास्त किया जा सकता है। हां; फासीवाद से लड़ने की प्रक्रिया में कुछ उदार बुर्जुआ तत्वों के साथ मोर्चा जरूर बनाया जा सकता है।

जब तक दुनिया में पूंजीवाद-साम्राज्यवाद मौजूद है फासीवाद के आगमन की सम्भावनायें भी मौजूद हैं। इससे स्थायी मुक्ति पूरी दुनिया के समाजवाद व कम्युनिज्म की दिशा में आगे बढ़ने पर ही हासिल हो सकती है। जब तक ऐसा नहीं होता, मानवता के पूंजीवाद के तहत फासीवादी तबाही झेलने की संभावनायें बनी रहेंगी।

e. युद्ध और विश्व युद्ध

पूंजी रक्त और गंदगी में सनी हुई पैदा होती है। पूंजीवादी विकास के चलते अब तक जितना खून बहाया जा चुका है वो सामंती जमाने के रक्तपात से कहीं से कम नहीं है। पूंजीवाद के जन्म के समय से ही युद्ध उसका अपरिहार्य हिस्सा हैं।

आदिम पूंजी संचय के लिए पहले ताकतवर मुल्कों द्वारा गरीब मुल्कों पर ऐसा युद्ध थोपा गया जिसमें गरीब मुल्क कहीं नहीं ठहरते थे। अमेरिकी देशों की आबादी का बड़े पैमाने पर कत्लेआम, अफ्रीकी राज्यों को जीत वहीं के निवासियों को गुलाम बनाने आदि की चर्चा पहले की जा चुकी है।

इसके बाद पूंजीवादी देशों के बीच की प्रतियोगिता उन्हें व्यापार युद्धों तक ले जाती है। इसके साथ ही यह प्रक्रिया नये-नये व्यापारिक उपनिवेशों को बनाने तक जाती है। पूरी 18 वीं सदी में ब्रिटेन, फ्रांस, हॉलैण्ड, स्पेन, पुर्तगाल आपस में व्यापारिक युद्धों में उलझे रहे। इस प्रतियोगिता में ब्रिटेन आगे निकल जाता है।

औद्योगिक क्रांति के बाद पूंजीवादी देशों के बीच कच्चे माल के स्रोत व तैयार माल को बेचने के बाजार को कब्जाने की प्रतियोगिता 19वीं सदी में उन्हें युद्धों में उलझाये रखती है। इस दौरान उपनिवेशों को कब्जाने का सिलसिला जारी रहता है।

19वीं सदी का अन्त आते-आते उपनिवेश कब्जाने की गति काफी तेज हो जाती है। कच्चे माल, बाजार, पूंजी निवेश के लिए साम्राज्यवाद के युग में साम्राज्यवादियों के बीच संघर्ष काफी तीखा हो जाता है। चूंकि अब तक दुनिया का साम्राज्यवादी मुल्कों के बीच आपसी विभाजन पूरा हो चुका होता है इसलिए उपनिवेशों के पुनर्विभाजन के लिए साम्राज्यवादी 1914 में पहले विश्व युद्ध तक जा पहुंचते हैं।

बीसवीं सदी में पहले व दूसरे विश्व युद्ध की तबाही अब तक के सभी युद्धों में हुए जान माल के नुकसान को पीछे छोड़ देती है। बीसवीं सदी में हथियार निर्माण व सैन्यीकरण अभूतपूर्व ऊंचाई तक पहुंच जाता है। इन विश्व युद्धों के इतर भी साम्राज्यवादी जब तब गरीब मुल्कों पर युद्ध थोपते रहे हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भी अमेरिकी साम्राज्यवाद भारी संख्या में देशों पर बमबारी से लेकर पूर्ण युद्ध छेड़ चुका है। सोवियत साम्राज्यवाद से प्रतियोगिता में ढेरों छाया युद्ध लड़े जा चुके हैं। इनकी तबाहियों को तालिका-1 में देख सकते हैं।

पूंजीवाद के पिछले 500 वर्षों के इतिहास में जहां एक ओर साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी मुल्कों द्वारा अपने मुनाफे के लिए एक-दूसरे के साथ व गरीब मुल्कों को गुलाम बनाने के लिए अन्यायपूर्ण युद्ध छेड़े गये, वहीं दूसरी ओर 1776 के अमेरिका के मुक्ति

युद्ध से शुरू करके तमाम गुलाम देशों की जनता ने साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के खिलाफ मुक्ति के न्यायपूर्ण संघर्ष भी लड़े। 20वीं सदी में समाजवाद के समर्थन-सहयोग से राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों की धारा ही पैदा हो गयी।

पूंजीवाद के पिछले 500 वर्षों के इतिहास में पूंजीवादी देशों के बीच का शक्ति संतुलन लगातार बदलता रहा है। एक समय की प्रभुत्वशाली ताकतें अगली सदी में प्रभुत्वहीन होने लगती हैं और उनकी जगह लेने के लिए दूसरी ताकतें आगे आती रही हैं। व्यापारिक पूंजीवाद के जमाने में स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैण्ड प्रमुख शक्तियां थीं। जहां हॉलैण्ड औद्योगिकीकरण के रास्ते पर आगे बढ़ा वहीं स्पेन, पुर्तगाल पिछड़ गये। इनके दक्षिण अमेरिकी महाद्वीप के उपनिवेश इनसे छिन गये। औद्योगिक क्रांति के बाद इंग्लैण्ड व फ्रांस प्रभुत्वशाली ताकत बन गये। परन्तु 19वीं सदी का अंत होते-होते इनका पराभव भी शुरू हो गया। पहले साम्राज्यवादी युद्ध के वक्त नयी साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में तेजी से विकास करते जर्मनी, जापान, अमेरिका अपना दावा पेश करने लगे। पहले विश्व युद्ध की समाप्ति पर चूंकि यह झगड़ा सुलटा नहीं इसलिए पहले विश्व युद्ध की परास्त ताकतें जर्मनी-जापान अपने यहां फासीवादी निजाम के साथ फिर अपना दावा पेश करने लगीं। द्वितीय विश्व युद्ध में इस झगड़े का अपेक्षाकृत स्थायी हल हो गया। अमेरिकी साम्राज्यवाद प्रभुत्वकारी ताकत के रूप में उभरा और हारे हुए जर्मनी, जापान, इटली ही नहीं युद्ध से ध्वस्त ब्रिटेन-फ्रांस भी दोयम दर्जे की ताकत बन गये। 1970 का दशक आते-आते अमेरिकी प्रभुत्व कमजोर तो हुआ पर अभी भी कोई दूसरी ताकत इतनी मजबूत नहीं हुई कि अमेरिका को खुली चुनौती दे सके। इस तरह द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कायम शक्ति संतुलन अभी भी जारी है।

अक्सर ही वर्चस्व खोने वाली ताकत के वर्चस्व खोने के कारण आर्थिक थे पर किसी ताकत ने नयी ताकत के लिए शांति से जगह खाली नहीं की। स्पेन, पुर्तगाल व्यापारिक युद्धों में भिड़कर ही इंग्लैण्ड-फ्रांस के लिए जगह छोड़ने पर मजबूर हुए। इसी तरह इंग्लैण्ड, फ्रांस ने दो विश्व युद्धों के बाद ही अमेरिका के लिए जगह खाली की।

इसी तरह साम्राज्यवादियों ने उपनिवेशों की जनता के मुक्ति युद्धों को यूं ही स्वतंत्रता के मुकाम तक नहीं पहुंचने दिया बल्कि उसके लिए खूनी जंग उन पर थोपी। 20वीं सदी में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद वियतनाम, कोरिया से लेकर मौजूदा इराक, अफगानिस्तान तक अमेरिकी साम्राज्यवाद की हस्तक्षेपकारी युद्धों का पूरा काला अध्याय लिखा जा चुका है।

इस तरह युद्ध पूंजीवाद की आम गति का हिस्सा रहे हैं। साम्राज्यवाद के दौर में ये विश्व युद्धों की भीषण तबाही की ओर दुनिया को ले गये।

तालिका-1 : पूंजीवाद द्वारा ढायी तबाही

स्वदेशी अमेरिकियों का सफाया1492-1890	10 करोड़
अफ्रीकियों का अटलांटिक दास व्यापार 1500-1870	1.5 करोड़
फ्रांसीसियों द्वारा हैती दास विद्रोह का दमन 1791-1803	150,000
फ्रांसीसियों की अलजीरिया विजय 1830-47	300,000
चीन में अफीम युद्ध 1839-42 और 1856-60	50 हजार
आयरिश आलू अकाल 1845-49	10 लाख
भारतीय विद्रोह का ब्रिटिश दमन 1857-58	1 लाख
पेरिस कम्यून का नरसंहार 1871	20 हजार
भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के तहत अकाल 1876-79 और 1897-1902	2.9 करोड़
संयुक्त राज्य अमेरिका में श्रमिक हड़तालों का सैन्य और पुलिस दमन 1877-1938	700
संयुक्त राज्य अमेरिका में काले लोगों की हत्यायें 1882-1964	3,445
बेल्जियम द्वारा कांगो का शोषण 1885-1908	1 करोड़
सं.रा. अमेरिका की फिलीपींस पर विजय 1898-1913	250,000
दक्षिण अफ्रीका में ब्रिटिश कंसन्ट्रेशन कैम्प 1899-1902	28 हजार
इक्वेटोरियल अफ्रीकी वर्षा वनों का फ्रांसीसी शोषण 1900-1940	8 लाख
हरेरो और नामाक्वा की जर्मन तबाही 1904-07	65 हजार
प्रथम विश्व युद्ध 1914-18	1 करोड़
यहूदियों के खिलाफ व्हाइट आर्मी कार्यक्रम 1917-20	1 लाख
इतालवी फासीवाद की अफ्रीका में विजय 1922-43	6 लाख
पूर्वी एशिया में जापानी साम्राज्यवाद 1931-45	1 करोड़
स्पेन में फासिस्ट आतंक 1936-39	2 लाख
नाजी आतंकवाद/कंसन्ट्रेशन और उत्पीड़न शिविर 1939-45	2.5 करोड़

हिरोशिमा और नागासाकी परमाणु बम विस्फोट	2 लाख
ताइवान में क्वोमिंगतांग नरसंहार 1947	30 हजार
मैडागास्कर में उपनिवेशवाद विरोधी विद्रोह का फ्रांसीसियों द्वारा दमन 1947	80 हजार
फिलिस्तीन का इजरायल द्वारा उपनिवेशीकरण 1948 वर्तमान	30 हजार
माउ-माउ विद्रोह का ब्रिटिश दमन 1952-60	50 हजार
आजादी का अल्जीरियाई युद्ध 1954-62	10 लाख
ग्वाटेमाला में सैन्य जुंटा 1954-96	2 लाख
हैती में पापा एण्ड बेबी डॉक दुवालियर शासन 1957-86	50 हजार
वियतनाम युद्ध 1963-75	34 लाख
इंडोनेशिया में कम्युनिस्टों का नरसंहार 1965-66	10 लाख
मैक्सिको सिटी में त्लाटेलोल्को नरसंहार 1968	400
लाओस और कंबोडिया पर अमेरिकी बमबारी 1969-75	7 लाख
निकारागुआ गृहयुद्ध 1972-90	80 हजार
चिली में पिनोशे तानाशाही 1973-93	3,197
अंगोला गृहयुद्ध 1974-92	5 लाख
पूर्वी तिमोर नरसंहार 1975-98	2 लाख
मोजाम्बिक गृहयुद्ध 1975-91	10 लाख
अर्जेन्टीना 'डर्टी वार' 1976-82	30 हजार
अल सल्वाडोर सैन्य तानाशाही 1977-92	70 हजार
कोवांजू नरसंहार 1980	1 हजार
भोपाल यूनियन कार्बाइड आपदा 1984	16 हजार
पनामा पर अमेरिकी आक्रमण 1989	3 हजार
इराक के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र प्रतिबंध 1991-2003	10 लाख (12 साल से कम उम्र के 5 लाख बच्चों समेत)
यूगोस्लाविया का विनाश 1992-95	2 लाख
रूस में पूंजीवादी तख्तापलट 1993	2 हजार
रवांडा नरसंहार 1994	8 लाख
कांगोलीयों का नागरिक युद्ध 1997-वर्तमान	6 लाख
भारतीय किसान आत्महत्याएं 1997-वर्तमान	1,99,132
अफगानिस्तान पर नाटो का कब्जा 2001-वर्तमान	30 हजार
इराक पर अमेरिकी आक्रमण और कब्जा 2003-वर्तमान	12 लाख
कुल :	22,16,41,874

पूंजीवाद के शिकार और गिनती जारी... ... ...

(स्रोतThe Black Book of Capitalism by Barry Lyndon, Last edited 9/6/2010)

ये विश्व युद्ध भी साम्राज्यवादी पूंजीवाद का अनिवार्य हिस्सा हैं। ये कोई अपवाद घटनायें नहीं हैं। इसीलिए जैसे ही कोई नई ताकत अमेरिकी साम्राज्यवाद को चुनौती देने की ओर जायेगी वैसे ही दुनिया तीसरे विश्व युद्ध की ओर बढ़ सकती है।

दूसरे विश्व युद्ध की अभूतपूर्व तबाही के बाद शांति अभियानों, परमाणु अस्त्रों के विकास आदि के आधार पर बुर्जुआ-संशोधनवादी हलकों से ऐसी आवाजें उठने लगीं जिनका सारतत्व यह था कि साम्राज्यवाद के युग में भी विश्व युद्धों या युद्धों को रोका जा सकता है। बुर्जुआ शांतिवादी तो महज शांति की अपीलों से युद्ध रोकने का स्वप्न देखते हैं। वहीं कुछ बुर्जुआ बुद्धिजीवी तर्क देते हैं कि इतनी भीषण तबाही वाले दूसरे विश्व युद्ध के बाद इससे अधिक तबाही वाले तीसरे विश्व युद्ध की ओर साम्राज्यवादी नहीं बढ़ना चाहेंगे। और वे आपसी झगड़ों को शांति के साथ बातचीत से सुलटा लेंगे। परमाणु युद्ध का हव्वा खड़ा कर संशोधनवादी ख्रुश्चोव ने अपने तीन शांतिपूर्ण सिद्धांतों को पेश कर दिया जिनका सारतत्व यह था कि युद्ध की तबाही के भय से जनता क्रांति का रास्ता छोड़ दे।

ऐसे सभी लोग साम्राज्यवाद का वास्तविक चरित्र देखने से इन्कार करते हैं। वे यह देखने में असफल रहते हैं कि साम्राज्यवादियों के बीच संघर्ष स्थायी चीज है और शांति तात्कालिक। ये संघर्ष उन्हें अनिवार्यतः युद्धों की ओर ले जायेंगे। जब तक दुनिया में पूंजीवाद-साम्राज्यवाद है तब तक दुनिया में युद्ध व विश्व युद्धों का खतरा भी मौजूद है। साथ ही साम्राज्यवादी यदि दुनिया को अपने मुनाफे की बंदरबांट के लिए युद्धों की ओर ले जायेंगे तो दुनिया के मेहनतकश भी पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के खिलाफ क्रांतिकारी युद्ध छेड़ेंगे। पूंजीवाद-साम्राज्यवाद का नाश कर ही युद्धों से दुनिया को मुक्त किया जा सकता है। स्थायी शांति कायम की जा सकती है।

विश्व युद्धों का खतरा टलने की चाहे जितनी बकवास बुर्जुआ बुद्धिजीवी हांकें, वास्तविकता यही है कि खुद बुर्जुआ वर्ग और उसकी सरकारें इस पर जरा भी यकीन नहीं करतीं। वे जानती हैं कि पूंजी के मुनाफे की खातिर उन्हें हमेशा युद्ध की तैयारी किये रखनी है। 20 वीं सदी में हथियार उद्योग की बढ़ती और हथियारों की होड़, हथियारों पर सरकारों का बढ़ता खर्च, बढ़ता सैन्य खर्च यही दिखलाता है कि दुनिया की सभी प्रमुख ताकतें दिन-रात युद्ध की तैयारियों में जुटी हैं।

विकिपीडिया के अनुसार वर्ष 2016 में दुनिया का कुल सैन्य खर्च 1686 अरब डालर था जो दुनिया के सकल घरेलू उत्पाद का 2.2% था। इसमें अमेरिका का सैन्य खर्च 611.2 अरब डालर, चीन का 215.7 अरब डालर, रूस का 69.2 अरब डालर, सऊदी अरब का 63.7 अरब डालर व भारत का 55.9 अरब डालर सैन्य खर्च था। प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष सैन्य खर्च के तौर पर सऊदी अरब 6909 डालर प्रति व्यक्ति सैन्य खर्च करता है। सिंगापुर 2385 डालर, इजरायल 1882 डालर, अमेरिका 1859, कुवैत 1289, ब्रिटेन 1066 डालर, फ्रांस 977 डालर प्रति व्यक्ति सैन्य खर्च करते हैं। 2002 में दुनियाभर की सरकारें अपने कुल बजट का 20% सैन्य खर्च करती थीं। 2007 में यह बढ़कर 21.9% हो गया। बाद में आर्थिक संकट के चलते इसमें कुछ गिरावट आयी।

दुनिया की शीर्ष 10 हथियार निर्माता कम्पनियों में 7 अमेरिकी, एक यू.के. की व एक इटली की है। 2012-16 के बीच अमेरिका हथियार निर्यात में 4716.9 करोड़ डालर मूल्य के हथियार निर्यात कर पहले स्थान पर था। रूस 3318.6 करोड़ डालर, चीन 876.8 करोड़ डालर, फ्रांस 856.1 करोड़ डालर व जर्मनी 791.2 करोड़ डालर के साथ दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवे स्थान पर थे। हथियार आयातकों में भारत 1823.9 करोड़ डालर के साथ पहले स्थान पर, सऊदी अरब 1168.9 करोड़ डालर के साथ दूसरे स्थान पर था। संयुक्त अरब अमीरात 659.3 करोड़ डालर, चीन 638.1 करोड़ डालर, अल्जीरिया 531.2 करोड़ डालर के साथ क्रमशः तीसरे, चौथे, पांचवे स्थान पर थे। (सभी तथ्य स्रोत : विकिपीडिया)

इस तरह से हथियारों की होड़ और बढ़ता सैन्य खर्च दिखलाता है कि जहां युद्ध पूंजीवादी विकास का अपरिहार्य हिस्सा हैं, वहीं यह दिखलाता है कि पूंजीवाद आज पतनशील हो लोगों की जरूरतों के बजाय संहार के हथियार बनाने मे जुटा है। आज इतने हथियारों का निर्माण कर लिया गया है कि धरती को कई बार नष्ट किया जा सकता है। ऐसे में हथियारों की यह होड़ पर्यावरण को भी नुकसान पहुंचा रही है।

f. पर्यावरण की तबाही

पिछले 500 वर्षों के अपने इतिहास में पूंजीवाद ने पर्यावरण को बहुत नुकसान पहुंचाया है। पिछले 100 वर्षों में उत्पादक शक्तियों के भारी विकास, परमाणु हथियारों ने पर्यावरण को उस बिन्दु तक प्रदूषित कर दिया है कि आज दुनियाभर के शासकों को भी इस पर घड़ियाली आंसू बहाने पड़ते हैं।

पूंजीवादी विकास की प्रक्रिया में औद्योगिक क्रांति, कोयले व भाप की ऊर्जा का व्यापक प्रयोग, रेलवे का विकास, स्टील, विद्युत और रसायनों का बढ़ता उपयोग, पैट्रोलियम और ऑटोमोबाइल मशीनीकृत व रसायनों के प्रयोग वाली खेती, तेजी से बढ़ता शहरीकरण, हथियार उद्योग व परमाणु हथियारों का विकास आदि घटित होते गये। इन सबने पृथ्वी के संसाधनों पर दबाव काफी बढ़ा दिया। संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने प्राकृतिक चक्रों को बुरी तरह प्रभावित किया। इस सबने पर्यावरण संकट की समस्या को पैदा किया। इस संकट के प्रमुख तत्व इस प्रकार हैं-जीवाश्म ईंधनों के व्यापक प्रयोग से बढ़ता ग्रीन हाउस प्रभाव, कार्बन डाई आक्साइड अवशोषित करने वाले जंगलों का तेजी से कटान, अम्लीय वर्षा जो झीलों, जंगलों व वनस्पतियों को नष्ट करती है (यह भी जीवाश्म ईंधनों के दहन से व कारखाने की गैसों से पैदा होती है), ऊपरी वायुमण्डल में सूर्य की पराबैगनी किरणों से इंसानों व अन्य जीवों की रक्षा करने वाली ओजोन परत का क्षरण, कृषि के तौर तरीकों से मिट्टी का क्षरण और रेगिस्तानों का प्रसार, औद्योगिक डम्पिंग व रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों के प्रयोग से ऊपरी भूमि व पानी के ऊपरी स्तर का प्रदूषित होना, समुद्रों में कचरे से बढ़ता प्रदूषण आदि।

पूंजीवाद का मूल अन्तरविरोध सामाजिक उत्पादन व व्यक्तिगत हस्तगतकरण होता है। सामाजिक उत्पादों के निजी मालिक पूंजीपति हमेशा एक-दूसरे से गलाकाटू प्रतियोगिता में उलझे रहते हैं। प्रतियोगिता में खुद को टिकाये रखने के लिए व अपना मुनाफा बढ़ाने के लिए वे उत्पादन शक्तियों के तेज विकास, प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन की ओर बढ़ते हैं। ऐसे में पूंजी के प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के जरिये अधिकतम मुनाफा कमाने के चरित्र पर कोई रोक पूंजीवाद मे संभव नहीं है। ऐसी कोई रोक अगर सरकारें आरोपित भी करती हैं तो पूंजी उन्हें तोड़ डालती है।

स्पष्ट है पूंजीवाद में मुनाफे की होड़ प्रकृति को भारी नुकसान पहुंचाने की ओर ले जाती है। मुनाफे की ही प्रवृत्ति उस कचरे को जो रिसायकिल करा जा सकता है पर जिसकी रिसायक्लिंग खर्चीली है, धरती पर यूं ही फेंक देने की ओर बढ़ाती है। पूंजीवादी विकास का अनिवार्य परिणाम देहातों की तबाही व तेजी से बढ़ता शहरीकरण है शहरों में सिमट आयी भारी आबादी के लिए साफ पानी, हवा उपलब्ध कराना लगातार मुश्किल होता जा रहा है।

पर्यावरण की तबाही का असर कार्बन उत्सर्जन व ग्रीन हाउस गैसों की बढ़ती मात्रा से मौसम में बदलाव, तापमान वृद्धि, भारी वर्षा, सूखा आदि के रूप में सामने आ रहा है। तमाम जंगली जानवरों की प्रजातियां लुप्त होने के कगार पर हैं। नदियां, समुद्र प्रदूषित हो

चुके हैं व उनके जीव खतरे में हैं। मनुष्य को भी साफ हवा-पानी मिलना मुश्किल हो चुका है। खेती में रसायनों का अत्यधिक प्रयोग व अधिक से अधिक उपज लेने की प्रवृत्ति मिट्टी की उर्वरता को नष्ट कर रही है। वहीं सब्जियों-अनाजों में भी हानिकारक रसायन घुल मिल जा रहे हैं। जंगलों के कटने से मिट्टी का कटान बढ़ रहा है।

इस तरह पूंजीवाद ने न केवल इंसानों के जीवन बल्कि पृथ्वी पर जीवन को ही खतरे में डाल दिया है।

पर्यावरण की तबाही रोकने के लिए एक वृहद दीर्घकालिक योजना की आवश्यकता है और पूरे समाज को ऐसी योजना पर संचालित करने की जरूरत है। पर ऐसी योजना परस्पर गलाकाटू प्रतियोगिता में उलझी साम्राज्यवादी कम्पनियों, साम्राज्यवादी-पूंजीवादी शासकों के रहते परवान नहीं चढ़ सकती। ऐसी योजना उसी समाज में लागू हो सकती है जहां सामाजिक उत्पादन का मालिकाना भी सामाजिक हो। जहां पूरा समाज एकीकृत योजना के तहत उत्पादन-उपभोग करता हो। यह सब पूंजीवाद मे सम्भव नहीं है। यह केवल व केवल समाजवाद में ही सम्भव है।

पूंजीवादी विकास की यह आम गति होती है कि वह गांवों को तबाह करता जाता है और शहरों में अत्यधिक आबादी का संकेन्द्रण करता चला जाता है। पहले के समाजों की गांवों में छितरी आबादी से पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में इस रूप में मदद मिलती थी कि फसलों आदि के जरिये मिट्टी से लिए गये खनिज तत्व पुनः मिट्टी में वापिस मिल जाते थे और मिट्टी की उर्वरता बनी रहती थी। शहरीकरण के चलते अब मिट्टी से लिए ये तत्व मिट्टी में वापिस नहीं पहुंच पाते, वे नदियों-समुद्रों तक तो पहुंच जाते हैं पर पुनः मिट्टी में मिल उसका उपजाऊपन कायम रखना अब सम्भव नहीं होता। चूंकि शहरीकरण की यह प्रक्रिया पूंजीवादी विकास की मूल प्रवृत्ति रही है और इसे पूंजीवाद में पलटा नहीं जा सकता, इसलिए बुर्जुआ बुद्धिजीवी-पर्यावरणवादी इस कारक की भूल कर भी चर्चा नहीं करते।

पर्यावरण की इस व्यापक तबाही के मुख्य दोषी साम्राज्यवादी शासक हैं। सबसे ज्यादा ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन यही करते हैं। सबसे ज्यादा उपभोग भी यही करते हैं। अपनी मशहूर पुस्तक दुश्मन में फेलिक्स ग्रीन ने अमेरिका द्वारा अपने पर्यावरण की तबाही को इन शब्दों में प्रस्तुत किया है।

"आइये अमेरिकी समाज के केवल चन्द पहलुओं पर गौर करें।

सुन्दर अमेरिका - पूंजीवाद एक अक्षत महाद्वीप में आ पहुंचा और उसने निर्दयता पूर्वक उसके साथ बलात्कार किया।

कुछ उदाहरण - लगभग समस्त भूक्षरण मनुष्य के कारण हुआ है,

... ... जंगलों को काटकर, पशुओं से गहन चराई कराकर तथा खेती के अन्य ऐसे तरीके अपनाकर जो थोड़े समय तक अधिक उपज देते हैं लेकिन पर्यावरण को चिरस्थायी क्षति पहुंचाते हैं।

प्रकृति को धरती के ऊपर एक इंच मोटी ऊपरी मिट्टी बनाने में तीन सौ से एक हजार वर्ष लग जाते हैं... ... ...वह जीवन्त भूमि जिसके बिना वनस्पति जीवन असम्भव है।

अमेरिका के निवासियों ने तृणाच्छादित समतल मैदानों के जंगलों का इतनी निर्दयता से विनाश किया है तथा लोभवश मिट्टी से अधिकतम उपज प्राप्त करने का प्रयास किया है कि अमेरिका में सम्पूर्ण ऊपरी मिट्टी की आधी तह सदैव के लिए नष्ट हो गई है।

1939 में ही अमेरिकी-भूसंरक्षता सेवा के मुख्य अधिकारी ने कांग्रेस को आगाह किया था।

इस देश के अल्प जीवन काल में ही हमने 28 करोड़ 20 लाख एकड़ कृषि और गोचर भूमि को वस्तुतः नष्ट कर दिया है.....इस देश की 10 करोड़ एकड़ भूमि, जिसमें अधिकांश सर्वोत्तम कृषि भूमि है, समाप्त हो चुकी है। हम उसका उद्धार नहीं कर सकते।

● हम भूक्षरण के फलस्वरूप चालीस एकड़ के 200 फार्मों के बराबर भूमि प्रतिदिन खो रहे हैं।

● इस जीवन-दायिनी मिट्टी की अपूरणीय क्षति का एक उदाहरण कांग्रेस की देहरी के ठीक सामने है। अनुमान लगाया गया है कि पोटोमैक दरिया प्रति वर्ष 55 लाख टन धरती के ऊपरी सतह की मिट्टी लाकर समुद्र में डाल रही है।

● प्रारम्भ में प्रशान्त महासागर के किनारे-किनारे 20 लाख एकड़ भूमि में लाल लकड़ी के वृक्ष खड़े थे। जिन्हें किसी ने छुआ तक नहीं था। इन दैत्याकार वृक्षों में से कुछ 4000 वर्ष पुराने थे जो पृथ्वी पर सर्वाधिक प्राचीन जीवन्त वस्तु थे। इसमें से 17 लाख एकड़ की कटाई व्यापारिक इस्तेमाल के लिए हो चुकी है, फिर भी इमारती लकड़ी का व्यापार करने वाली कम्पनियां इन्हें काट गिराने में जुटी हैं। कैलीफोर्निया के गर्वनर रीगन 'स्वतंत्र उद्योग' के प्रबल समर्थक हैं। जब नागरिकों ने कुछ बचे-खुचे लाल जंगलों को बचाने के लिए अभियान संगठित किया तो उनकी समझ में नहीं आया कि किसलिए यह बात का बतंगड़ बनाया जा रहा है। कहा जाता है कि उन्होंने यह कहा कि लाल लकड़ी के वृक्षों में क्या बात खास है, अगर किसी ने उनमें से एक वृक्ष देखा है तो उसने सब वृक्ष देख लिये हैं।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के अछूते जंगलों का 7/8 वां भाग इमारती लकड़ी का व्यापार करने वाली प्राइवेट कम्पनियों ने काट डाला है... ... ... बगैर इस पर ध्यान दिये कि वे प्रकृति के जटिल संतुलन के साथ क्या कर रहे हैं, या वन्य पशु-पक्षियों एवं कीट पतंगों, स्थानीय जलवायु एवं पानी की ढलान पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। प्राकृतिक सौन्दर्य को पहुंची क्षति के बारे में तो उन्होंने कुछ सोचा ही नहीं।

● 7 सितम्बर 1970 को एडिनवरा विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जे.डब्ल्यू. वाटसन ने ब्रिटिश एसोसिएशन को यह रिपोर्ट दी कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपने 85% वन्य जन्तुओं एवं 80%जंगलों को नष्ट कर दिया है।

● न्यूयार्क टाइम्स के एक रविवार संस्करण में जो अखबारी कागज लगता है वह 6000 एकड़ जंगल की शुद्ध वार्षिक उपज के बराबर है।

● प्रतिवर्ष औसतन एक करोड़ एकड़ जंगल दावाग्नि के कारण नष्ट हो जाता है, फिर अग्नि शमन के लिए आवंटित धनराशि हास्यास्पद रूप से अपर्याप्त है।

जबकि अनगिनत एकड़ पुराने जंगल क्षत-विक्षत एवं धराशायी पड़े हैं, मानों उन्हें प्रचण्ड विस्फोटकों से उड़ा दिया गया हो, और वृक्षों को जकड़ने वाली खाद मिट्टी और मिट्टी की ऊपरी परत वर्षा के कारण बह गई है, संयुक्त राज्ट्र अमेरिका में अभूतपूर्व स्तर पर जल प्रदूषण हो रहा है। अमेरिका की लगभग प्रत्येक नदी और झील, ... उसका आकार चाहे जैसा भी हो... ... ... मल-मूत्र, औद्योगिक कूड़े तथा खदानों में प्रयुक्त तेजाब के कारण अब प्रदूषित हो चुकी है। 1968 की रिपोर्ट के अनुसार प्रतिदिन न्यूयार्क शहर का 2 करोड़ गैलन मल-मूत्र जैसे का तैसा है हडसन नदी में गिरता है। राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने चेतावनी दी है कि यदि जल प्रदूषण इसी रफ्तार से जारी रहा तो 1980 तक जल में इतना कूड़ा इकट्ठा हो जायेगा कि वह अमेरिका बाइसों नदियों की प्रणाली की आक्सीजन को हजम कर लेगा। जब ऐसा हो जायेगा तो इन नदियों की मछलियां जीवित नहीं बच सकेंगी। ईरी झील में जो कुछ हुआ वह संकट की प्रथम चेतावनी है। इससे भारी मात्रा में डेट्रोइट तथा अन्य नगरों का कूड़ा फेंके जाने के कारण यह विशाल तथा आश्चर्यजनक रूप से उर्वर अन्त:स्थलीय समुद्र अब लगभग मत्स्य विहीन हो चुका है।

2 फरवरी, 1970 के "टाइम" मैगजीन ने अपने मुख्य लेख में यह बताया कि अमेरिकावासी किस प्रकार अपने पर्यावरण का सत्यानाश कर रहे हैं। सर्वेक्षण रिपोर्ट के कुछ निम्नांकित उद्धरणों में दी गई सूचनाएं पाठकों को अचम्भे में डाल देती हैं।

आधुनिक प्राविधा ने असंख्य संश्लिष्ट पदार्थों द्वारा प्रकृति को बोझिल करना आरम्भ कर दिया है, इनमें अनेक पदार्थ नष्ट होने का नाम ही नहीं लेते ... ... इस प्रकार ये मनुष्य की तो बात ही क्या अन्य प्राणियों को भी विषाक्त कर रहे हैं। विषाक्त धुआं, अल्यूमीनियम के डिब्बे जिनमें जंग नहीं लगता, अकार्बनिक प्लास्टिक जो दशकों तक नष्ट नहीं होते, तैरता हुआ तेल जो महासागरों की तापीय परावर्तकता को बदल सकता है और रेडियोधर्मी छीजन जिसकी विषाक्तता अक्षरश: हजारों वर्षों तक बनी रहती है- इन वस्तुओं में शामिल हैं जो प्रकृति को प्रभावित कर रही हैं। पृथ्वी पर वायु संचार करने वाली हवायें केवल 6 मील ऊपर हैं, विषाक्त कूड़ा करकट सामान्यत: नदियों को स्वच्छ रखने वाले जीवाणुओं को नष्ट कर सकता है।

यद्यपि विश्व की जनसंख्या का मात्र 5.7 प्रतिशत अमेरिका में रहता है, अमेरिका में विश्व के 40 प्रतिशत प्राकृतिक संसाधनों के उत्पादन की खपत है।

अत्यधिक मात्रा मे उत्पादन के परिणाम-स्वरूप भारी मात्रा में कूड़ा-करकट जमा होता है। अमेरिका के लोग प्रतिवर्ष 70 लाख कारें, दस करोड़ टायर, 2 करोड़ टन कागज, 28 अरब बोतलें तथा 48 अरब डिब्बे कूड़े में फेंक देते हैं। अमेरिका में प्रतिवर्ष जो कूड़ा हवा के रूप में फेंका जाता है और वातावरण में खप जाता है, उसका वजन 4 करोड़ टन अर्थात देश में होने वाली इस्पात की पैदावार से अधिक होता है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के संयंत्र प्रतिवर्ष 16 करोड़ 50 लाख टन ठोस कूड़ा निकालते हैं तथा 17 करोड़ 20 लाख टन धुआं और विषाक्त भाप हवा में छोड़ते हैं।

अपोलो 10 के अंतरिक्ष यात्री को वाह्य अन्तरिक्ष में 25000 मील की ऊंचाई से लास एंजिल्स अमिट गहन धुंए की तरह दिखाई पड़ा।

लास एंजिल्स धुंऐ और कोहरे से भरे एक नशेब मे बसा है जिसमें अक्सर हवा की ऊंचाई सिर्फ 300 फीट रहती है। इसलिए उस पर मुसीबत मंडराती रहती है। आए दिन शहर के सार्वजनिक स्कूल बच्चों को कसरत करने से रोकते हैं ताकि वे गहरी सांस न लें।

जान्स हापकिन्स विश्वविद्यालय के डा. जेरोम डी. फ्रैन्क ने पाया कि प्रदूषित क्षेत्र में पचास से सत्तर वर्ष की आयु मे किसी व्यक्ति को श्वास रोगों से मरने की सम्भावना उस व्यक्ति से दुगुनी है जिसे अब भी ऐसे क्षेत्र में रहने का सौभाग्य प्राप्त है जहां वायु स्वच्छ है।

प्रतिवर्ष 70 वर्ग मील खुली जमीन वृहत्तर लास एंजिल्स नगर के पेट में समा जाती है। न केवल इस अत्युत्तम कृषि भूमि से उत्पादन समाप्त हो जाता है बल्कि इसका विकास भी अस्तव्यस्त रूप में होता है। कैलीफोर्निया में ही फूहड़ ढंग से फैल रहे क्षेत्रों के लिए "स्लर्व" शब्द का ईजाद किया गया था।

विश्व के औद्योगिक प्रदूषण का लगभग 50 प्रतिशत अमेरिका की देन है।" (स्रोत : दुश्मन; फेलिक्स ग्रीन, पृष्ठ 11-14, पक्षधर कानपुर)

फेलिक्स ग्रीन के उपरोक्त पुस्तक लिखे काफी वक्त बीत चुका है। अमेरिका में इस दौरान हालात और बदतरी की ओर ही गये हैं। जो कुछ अमेरिका में किया गया वहीं सब कुछ बदले रूपों में पूंजीवाद की राह पर चलने वाले हर देश में दोहराया जा रहा है।

पिछले 3-4 दशकों में पूंजीवादी-साम्राज्यवादी दुनिया में भी पर्यावरण की तबाही को लेकर चिन्ता काफी बढ़ गयी है। ढेरों गैर सरकारी संगठन पर्यावरण संरक्षण को लेकर खड़े किये गये हैं। अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर काफी चिन्तायें व समझौते के प्रयास हो रहे हैं। इन सबका अभी तक हश्र यही हुआ है कि कार्बन उत्सर्जन कम करने के मसले पर या तो समझौते हो नहीं पा रहे हैं या हो भी रहे हैं तो लागू नहीं किये जा रहे हैं। क्योटो प्रोटोकाल व पेरिस समझौते का हश्र सबके सामने है। इन मंचों से व गैरसरकारी संगठनों की मदद से साम्राज्यवादी ताकतें तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों पर कार्बन उत्सर्जन कम करने का दबाव बना रहे हैं। वे अपने उत्सर्जन में कोई कमी

नहीं लाना चाहते। वहीं पिछड़े पूंजीवादी देश इसके बदले (कार्बन उत्सर्जन कम करने के बदले) साम्राज्यवादियों से मुआवजे की मांग कर रहे हैं। कुल मिलाकर पर्यावरण का मसला भी साम्राज्यवादियों के आपस मे लड़ने व गरीब मुल्कों पर धौंसपट्टी का मसला बना हुआ है। इस सब के बीच कुछ भी सार्थक उपाय न तो हो सकते थे और न हो रहे हैं।

यह सब कवायद कर साम्राज्यवादी-पूंजीवादी ताकतें समाज में यह प्रदर्शित करना चाहती हैं कि वे पर्यावरण के प्रति चिन्तित हैं वे यह स्थापित करना चाहते हैं कि पूंजीवाद में पर्यावरण की तबाही को रोका जा सकता है। ढेरों बुद्धिजीवी तरह-तरह के सुझाव दे, तमाम एन.जी.ओ. के जरिये जागरूकता बढ़ा पूंजीवादी कारपोरेशनों के बजाय जनता को तबाही के लिए जिम्मेदार ठहराने में जुटे हैं।

पूंजीवाद में पर्यावरण की तबाही रुकना असम्भव है। पर्यावरण को सुरक्षित रखने का काम केवल और केवल पूंजीवाद के विनाश के जरिये ही किया जा सकता है।

B. समाजवादी विकास

पूंजीवादी समाज का बुनियादी अन्तरविरोध उत्पादन के सामाजिक स्वरूप व व्यक्तिगत हस्तगतकरण का है। यह अन्तरविरोध पूंजीवादी समाज में तरह-तरह की तबाहियां पैदा करता है जिन्हें पहले हिस्से हम देख आये हैं। पूंजीवादी समाज में इस अन्तरविरोध का कोई समाधान सम्भव नहीं है। इस अन्तरविरोध का समाधान केवल और केवल इसी तरीके से हो सकता है कि पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ क्रांति कर उसको ध्वस्त कर दिया जाय और सामूहिक स्वामित्व पर आधारित समाजवादी व्यवस्था का निर्माण किया जाय। अक्टूबर 1917 की महान क्रांति ऐसी ही क्रांति थी जिसने रूस में समाजवादी समाज के रूप में नये युग का सूत्रपात किया था। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात कुछ और देशों के समाजवाद की राह पकड़ने से एक समाजवादी खेमा अस्तित्व में आ चुका था।

समाजवादी समाज में उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व स्थापित हो जाता है। मजदूर वर्ग व अन्य मेहनतकश समस्त उद्यमों के स्वामी बन जाते हैं। मार्क्सवाद समाज की मार्गदर्शक विचारधारा बन जाती है। ये सभी तत्व समाजवादी समाज में कम्युनिज्म के तत्व होते हैं। पर समाजवादी समाज अभी कम्युनिस्ट समाज की सिर्फ पहली मंजिल ही होता है जो लगातार कम्युनिस्ट समाज की ऊपरी मंजिल की दिशा में विकास करता रहता है। चूंकि पूंजीवादी तत्वों को एक झटके में समाप्त नहीं किया जा सकता इसलिए समाजवादी समाज मे पूंजीवादी तत्व भी मौजूद रहते हैं। उत्पादन सम्बन्ध और अधिरचना दोनों ही मामलों में पूंजीवादी तत्व मौजूद रहते हैं। बुर्जुआ अधिकार मौजूद रहते हैं और बुर्जुआ अधिकारों की विचारधारा मौजूद रहती है। इसीलिए समूचे समाजवादी समाज में वर्ग, वर्ग अन्तरविरोध व वर्ग संघर्ष मौजूद रहते हैं। सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच संघर्ष जारी रहता है। समाजवादी रास्ते और पूंजीवादी रास्ते के बीच संघर्ष मौजूद रहता है।

समाजवादी समाज में बुर्जुआ वर्ग को पूर्णतः पराजित करने के लिए, सभी वर्गों, वर्ग विभेदों को समाप्त करने की दिशा में बढ़ने के लिए सर्वहारा तानाशाही आवश्यक होती है। सर्वहारा तानाशाही के बगैर समाजवादी समाज में कम्युनिज्म की दिशा में आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

चूंकि समाजवादी काल पूंजीवाद से कम्युनिज्म के बीच का संक्रमण काल होता है इसलिए यह समूचा काल ही उथल-पुथल और क्रांतियों से भरा हुआ होता है। इस पूरे काल में श्रम और पूंजी का अन्तरविरोध प्रधान अन्तरविरोध बना रहता है। इसीलिए इस बात की संभावना भी होती है कि समाजवादी विकास की प्रक्रिया उलट जाय और पूंजीवादी पुनर्स्थापना हो जाए। जैसा कि 1956 में सोवियत संघ और 1976 में चीन में हुआ। केवल और केवल पूंजीवादी तत्वों, पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों, विचारों के खिलाफ अनवरत संघर्ष चलाकर, सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांतियों की एक लम्बी शृंखला के जरिये ही पूंजीवादी पुनर्स्थापना के खतरे को टाला जा सकता है।

समाजवादी समाज मे कम्युनिज्म के तत्व मजदूर वर्ग के शासन के तहत हावी रहते हैं और पूंजीवादी तत्वों, सम्बन्धों, विचारों पर सर्वहारा के क्रांतिकारी अधिनायकत्व के तहत लगातार लगाम लगाये रहते हैं। समाजवादी समाज की विकास प्रक्रिया के दौरान समाज को वह सब तबाही-बर्बादी नहीं झेलनी पड़ती जो पूंजीवादी समाज में लगातार पैदा होती रहती है। समाजवादी विकास प्रक्रिया गुणात्मक तौर पर पूंजीवादी विकास प्रक्रिया से श्रेष्ठ होती है।

a. समाजवादी विकास के तहत जीवन

हम देख आये हैं कि पूंजीवादी व्यवस्था कैसे अपनी उत्पत्ति के समय से ही समाज के भीतर तरह-तरह की तबाही पैदा करती रही है। किसानों को भूमि से जबरन बेदखल कर सर्वहारा की पांतों में धकेलना, इस बेदखल आबादी को कठोर कानूनों के जरिये उजरती गुलामी के अनुशासन की ओर धकेलना, समाज में अमीरी व गरीबी की खाई को लगातार चौड़ी करते जाना, सापेक्षिक बेशी आबादी के रूप में बेरोजगारों की फौज का पूंजीवादी विकास के लिए आवश्यक हो जाना, सांस्कृतिक पतन, नशा-अपराध का बोलबाला आदि पूंजीवादी विकास के आवश्यक परिणाम हैं। इस सब मामलों में समाजवादी समाजों की क्या स्थिति रही है?

किसानों के साथ पूंजीवादी समाज और समाजवादी समाज द्वारा किये जाने वाले सलूक में गुणात्मक तौर पर भिन्नता है। पूंजीवादी समाज अपनी शुरुआत में जबरन व बाद में बाजार के हवाले कर छोटी-मझोली किसानी को लगातार तबाह करता है, उन्हें

सर्वहारा की पांतों में धकेलता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप वह धनी किसान, बड़े फार्मरों के हाथों में भूमि का संकेन्द्रण करता है। गरीब-छोटे-मझोले किसानों को वह इस रक्तरंजित प्रक्रिया से सर्वहारा की पांतों में धकेलता है।

1917 की महान अक्टूबर समाजवादी क्रांति के वक्त सर्वहारा वर्ग जहां नेतृत्वकारी भूमिका में था वहीं गरीब किसान उसके दृढ़ सहयोगी थे। इस क्रांति ने पहले दिन ही भू-आज्ञप्ति के जरिये रूस में जमींदारों, पूंजीपतियों, जार के परिवारों, मठों-गिरजाघरों की करीब 40 करोड़ एकड़ भूमि जब्त कर उसे राज्य की मिल्कियत घोषित कर दिया। साथ ही इस भूमि को किसानों में वितरित करने का आदेश जारी कर दिया गया। शुरुआत में इस आदेश का लाभ देहाती कुलकों ने उठाया और वे जमींदारों की छीनी भूमि पर खुद कब्जा कर मजबूत बनने लग गये। 1918 के मध्य में कुलकों की इस मनमानी को रोकने के लिए गरीब किसानों की समितियां बनाने का निर्णय हुआ। इन समितियों ने कुलकों की मनमानी के खिलाफ संघर्ष किया और जब्त की भूमि, खेती के औजारों का फिर से वितरण सुनिश्चित कराया। अन्ततः जमींदारों के साथ-साथ कुलकों की भी कुछ जमीन जब्त हुई और उनका गरीब-मझौले किसानों में वितरण हुआ। इस भूमि वितरण के चलते रूस में मध्यम किसानों की तादाद किसानों की बहुसंख्या हो गयी और वे सर्वहारा सत्ता के दृढ़ समर्थक बन गये।

1920 के दशक के अन्त में जब सामूहिकीकरण की प्रक्रिया शुरु हुई तो इसके निशाने पर कुलक थे। सामूहिक फार्मों के लिए जहां गरीब-मझौले किसानों का समझा-बुझाकर सहमत किया गया वहीं कुलकों की जमीन, जानवर आदि जब्त किये गये। गरीब-मझौले किसानों के सहयोग से यह कुलकों को वर्ग के बतौर समाप्त करने की नीति थी। कुलक ग्रामीण सोवियत संघ के पूंजीवादी शोषक तत्व थे। इनको वर्ग के बतौर समाप्त कर व सामूहिकीकरण के जरिये ही कृषि में समाजवादी उत्पादन सम्बन्ध पैदा किये जा सकते थे। सामूहिकीकरण की प्रक्रिया से कृषि उत्पादन में तेज वृद्धि हुई और सामूहिक फार्मों के किसानों का जीवन स्तर बहुत तेजी से सुधरा। बाद में ट्रैक्टरों और आधुनिक मशीनों के प्रयोग से उपज व फलस्वरूप किसानों का जीवन स्तर और सुधरा।

सामूहिक फार्मों से आगे बढ़कर उन्हें राजकीय फार्म में बदला जाता इससे पहले ही 1956 में सोवियत संघ में पूंजीवादी पुनर्स्थापना हो गयी। इसके बावजूद इस तथ्य से कोई इंकार नहीं कर सकता कि सोवियत संघ के सामूहिक फार्मों के किसान पूंजीवादी देशों के गरीब-मझौले किसानों की तुलना में बहुत बेहतर जीवन जीते थे। सामूहिक फार्म किसानों के लिए क्लब से लेकर बच्चों के स्कूल, खेलकूद के इंतजाम से लेकर तमाम सुविधाओं का इंतजाम करते थे। सामूहिक खेती व्यवस्था में गांव की दरिद्रता और अभाव खत्म हो गया और करोड़ों गरीब किसान रोजी-रोटी की चिन्ता से मुक्त हो गये।

पूंजीवादी आलोचक समाजवाद में किसानों के इस खुशहाल जीवन को स्वीकारने के लिए कभी तैयार नहीं होते। किसानों की सोवियत राज में दुर्दशा साबित करने के लिए वे एक से बढ़कर एक कुतर्क व तथ्यों से छेड़छाड़ करते हैं। सामूहिकीकरण के दौरान कुलकों पर की गयी सख्ती व सजाओं का हवाला देकर वे इसे पूरे किसान समुदाय पर सख्ती घोषित कर देते हैं। वे घोषित कर देते हैं कि सर्वहारा राज्य के तहत किसान भूदासता की सी स्थिति में थे, कि किसानों से जबरन काम कराया जाता था, कि उनकी भूमि जोर-जबर्दस्ती से सामूहिक फार्मों में मिला ली गयी। इसी तरह कुछ पूंजीवादी आलोचक यह भी कहते हैं कि सामूहिकीकरण के दौरान चूंकि कुलकों पर हमला बोला गया और कुलक ही सबसे बेहतर किसान थे, इसलिए सामूहिकीकरण के दौरान उत्पादन गिर गया। किसान राज्य के बंधुआ बन गये व उत्पादन का समस्त प्रेरण समाप्त हो गया।

पूंजीवादी आलोचकों को निजी सम्पत्ति व निजी लाभ के अलावा उत्पादन बढ़ाने का कोई और प्रेरण समझ में नहीं आता है। वे सामूहिक ढंग से सामूहिक हित में भी उत्पादन तेजी से बढ़ सकता है इसे समझ ही नहीं सकते हैं। क्योंकि इसे समझने का अर्थ है कि समाजवादी उत्पादन की श्रेष्ठता स्वीकार कर लेना। इसी तरह किसानों की दासता, जोर-जबर्दस्ती, बंधुआ आदि बातें सफेद झूठ हैं।

किसानों ने स्वेच्छा से सामूहिक फार्म में शामिल होना तय किया। यह बात पूंजीवादी बुद्धिजीवी समझ ही नहीं पाते। पूंजीवाद जो कि किसानों को तबाह-बर्बाद कर भूमि का केन्द्रीयकरण करता है, जोर-जबर्दस्ती से छोटे-मझौले किसानों की भूमि छीनता है। ऐसे में छोटे-मझौले किसानों का स्वेच्छा से सामूहिक फार्मों में शामिल होना उन्हें हजम नहीं होता और वे सामूहिक फार्मों पर मनगढ़न्त आरोप लगाने लगते हैं। समाजवाद में किसानों का बेहतर जीवन स्तर स्वीकार करना उनके लिए कठिन था।

जहां तक प्रश्न मजदूरों के जीवन का है तो समाजवाद में उनका जीवन स्तर पूंजीवाद की तुलना में बहुत बेहतर था। मजदूर वर्ग समाजवाद की व्यवस्था का मुख्य संचालक था, वही वास्तविक शासक था। उत्पादन के समस्त साधन सर्वहारा राज्य के थे। मजदूर एक फैक्ट्री के स्तर पर उत्पादन प्रक्रिया से लेकर प्रबंधन तक पर सामूहिक नियंत्रण रखते थे। समाजवादी राज्य में यूनियन बनाने व हड़ताल तक के उन्हें अधिकार प्राप्त थे। प्रबंधकों की मनमानी का उन्हें शिकार नहीं होना पड़ता था। नौकरी से निकाला जाना जो पूंजीवाद में रोज घटने वाली घटना थी, समाजवादी समाज में एकदम परायी बन चुकी थी। मजदूर अपनी फैक्ट्री से लेकर समूचे देश की राजनीति में उत्सुकतापूर्वक हिस्सा लेते थे। देश के हर महत्वपूर्ण मसले, बजट इत्यादि पर ऊपर से नीचे उनकी राय ली जाती थी। सोवियतों में उनकी आबादी के सापेक्ष अधिक प्रतिनिधि भेजने की सहूलियत थी। स्कूल-कालेजों से लेकर हर मामले में मजदूरों को बाकी वर्गों पर वरीयता हासिल थी। मजदूरों के लिए सेनीटोरियम से लेकर नाट्यग्रहों, क्लबों सबकी सुविधा मौजूद थी।

जहां तक अमीरी-गरीबी की खाई का सवाल है समाजवाद में यह लगातार घटती चली गयी। क्रांति के दौरान पूंजीपतियों की समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। उनके शोषण के अधिकार पर रोक लगा दी गयी। कुछ ही समय पश्चात पुराना पूंजीपति वर्ग समाप्त हो गया। समाजवादी समाज में गैरबराबरी वेतन की कुछ ग्रेडों तक सीमित रह गयी। समय के साथ इनका अन्तर भी कम होते चले जाना था। इसी तरह मजदूर-किसान, शारीरिक श्रम-मानसिक श्रम, गांव-शहर के अन्तर को भी क्रमशः कम करने की ओर बढ़ा जाना था।

'क्षमतानुसार काम और काम के अनुसार दाम' के तहत मौजूद बुर्जुआ अधिकार को कम्युनिज्म के 'क्षमतानुसार काम और आवश्यकतानुसार भुगतान' की दिशा मे तब्दील होने की ओर बढ़ना था। इस तरह समाजवाद की समूची दिशा ही पूंजीवाद के उलट गैरबराबरी की खाई को समाप्त करते जाने की थी।

बेरोजगारी की पूंजीवादी बीमारी से समाजवाद के शुरुआती वर्षो में ही छुटकारा पा लिया गया था। पूंजीवाद में बेरोजगारी मजदूरों की श्रमशक्ति का मूल्य गिराने व तेजी के समय अतिरिक्त श्रम की आपूर्ति का जरिया थी। समाजवाद में न तो श्रमशक्ति के मूल्य गिराने की कोई आवश्यकता थी और न ही समाजवादी अर्थव्यवस्था किसी अराजक उत्पादन का शिकार थी कि कोई संकट या तेजी पैदा होती, इसलिए यहां बेरोजगारी को बना के रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

पूंजीवाद के अराजकतापूर्ण उत्पादन के उलट समाजवाद में नियोजित योजनाबद्ध उत्पादन होता है। मूल्य का नियम व बाजार अभी भी मौजूद होते हैं पर उन पर सर्वहारा राज्य हर मामले में नियंत्रण रखता था। कीमतें बाजार के हवाले न होकर राज्य द्वारा नियमित की जाती थीं। समाज की आवश्यकता का आकलन कर उत्पादन का लक्ष्य तय किया जाता था।

समाजवादी सोवियत संघ में मेहनतकशों को जनवाद हासिल था। हां, पूंजीपति वर्ग और अन्य शोषक वर्गों पर सर्वहारा तानाशाही हमेशा लगाम रखती थी। पूंजीवाद में सारा जनवाद पूंजीपति वर्ग के लिए होता है व मेहनतकश वर्गों पर तानाशाही लादी जाती है, समाजवाद में यह चीज उलट दी जाती है और इसकी दिशा उस ओर होती है जहां वर्गों का खात्मा व इसलिए जनवाद का भी विलोप हो जाय।

समाज की समस्त कार्य करने योग्य आबादी को समाज की उत्पादक कार्यवाही में लगाकर समाजवादी समाज व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का इंतजाम करता है। प्रत्यक्ष उत्पादक का उत्पादन के साधनों पर सामूहिक अधिकार के चलते उत्पाद से अलगाव क्रमशः खत्म होता जाता है। अब व्यक्ति पूंजीवादी संकीर्ण श्रम विभाजन का गुलाम नहीं रह जाता। इसीलिए पूंजीवाद की नशाखोरी-अपराध सरीखी बीमारियां समाजवाद के शुरुआती कुछ वर्षों में समाप्त हो जाती हैं। पूंजीवाद की पतित उपभोक्तावादी संस्कृति जो व्यक्ति को चौतरफा सांस्कृतिक पतन की ओर धकेलती है, की जगह सामूहिक संस्कृति का बोलबाला होता जाता है।

पूंजीवाद में आपसी प्रतियोगिता के चलते पूंजीपति उत्पादक शक्तियों के निरंतर विकास को मजबूर होते हैं। उत्पादक शक्तियों का यह विकास चूंकि प्रतियोगिता में खुद को टिकाये रखने, अपने मुनाफे को बढ़ाने से प्रेरित होता है इसलिए यह विकास मजदूरों-मेहनतकशों के भारी शोषण-उत्पीड़न के साथ सम्पन्न होता है। पूंजीवादी विकास के साथ जनता की कंगाली-बदहाली बढ़ती जाती है।

पूंजीवाद के उलट समाजवाद में मजदूर वर्ग उत्पादन के साधनों का सामूहिक रूप से मालिक बन जाता है। इससे न केवल उत्पादन प्रक्रिया-उत्पाद से प्रत्यक्ष उत्पादक का अलगाव क्रमशः खत्म होता जाता है बल्कि अब उत्पादक शक्तियों का विकास उसके जीवन को बेहतरी का जरिया बन जाता है। उत्पादक शक्तियों के विकास से समस्त मेहनतकश अवाम के जीवन में खुशहाली-सम्पन्नता पैदा होने लगती है। यह बात अपने आप में उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए महत्वपूर्ण प्रेरणा पैदा करती है। ऐसे किसी प्रेरण का पूंजीवाद में नितान्त अभाव होता है। अब समाज की अधिकाधिक आबादी उत्पादक शक्तियों के विकास में अपनी भूमिका निभाने लगती है। परिणाम यह होता है कि उत्पादक शक्तियों का इतनी तेजी से विकास होता है कि पूंजीवादी काल में होने वाला उत्पादक शक्तियों का विकास बौना नजर आने लगता है। पिछड़ा रूस कुछ ही वर्षों में समाजवाद में प्रवेश कर साम्राज्यवादी अमेरिका की टक्कर का देश बन गया तो उत्पादक शक्तियों के तीव्र विकास की इसमें बड़ी भूमिका है।

कुल मिलाकर समाजवादी समाज में व्यक्ति व समूह का रिश्ता पूंजीवाद की तरह एक-दूसरे का विरोधी न होकर एक-दूसरे का पूरक हो जाता है। यहां प्रत्येक व्यक्ति का विकास समूह के विकास की शर्त होता है। इसलिए हर मामले में समाजवादी समाज पूंजीवाद से बेहतर जीवन अपने नागरिकों को मुहैय्या कराता है।

b. समाजवाद व बाकी दुनिया

पूंजीवादी समाज अपने समाज के भीतर के साथ-साथ अपनी पैदाइश के साथ बाहरी दुनिया में भी तबाही पैदा करता है। आदिम पूंजी संचय के काल से लेकर आधुनिक साम्राज्यवाद के दौर तक बाकी देशों को गुलाम बनाने, कर्ज के जाल में फंसाने आदि कार्यवाहियों के जरिये पूरी दुनिया के स्तर पर भारी बर्बादी पैदा करना लगातार जारी रहता है।

पूंजीवाद के उलट समाजवाद न केवल अपने देश में खुशहाल जीवन पैदा करता है बल्कि बाकी दुनिया में भी साम्राज्यवाद द्वारा ढायी जा रही तबाही को कम करने का प्रयास करता है।

समाजवादी सोवियत संघ ने दुनिया भर में समाजवाद के लिए चल रहे संघर्षों व राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों को हर तरीके से सहयोग-समर्थन प्रदान किया। इसी सहयोग के चलते राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों की लहर 20वीं सदी में पैदा होना आसान हुआ। साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए लड़ने वाले हर गुलाम देश को समाजवादी सोवियत संघ ने न केवल संघर्ष में पूरा सहयोग दिया बल्कि स्वाधीन होने के बाद तकनीक से लेकर वैज्ञानिकों-इंजीनियरों आदि की मदद कर देशों को खड़ा होने में मदद की यह मदद बिना शर्त थी।

1956 के बाद जब सोवियत संघ पूंजीवादी देश में बदल गया तो क्रमशः उसकी दूसरे देशों को मदद उन देशों को लूटने का जरिया बन गयी।

समाजवादी समाज में जनता के बेहतर जीवन ने पूंजीवादी-साम्राज्यवादी देशों के शासकों को अपनी जनता के कल्याण के लिए कदम उठाने के लिए एक कारक का काम किया। कल्याणकारी राज्य के जरिये बाकी दुनिया के मेहनतकशों के जीवन-स्तर में सुधार आया। 70 के दशक के अन्त में सभी समाजवादी देशों में पूंजीवादी पुनर्स्थापना के चलते यह दबाव समाप्त हो गया और पूंजीवादी-साम्राज्यवादी शासक वर्ग उदारीकरण-वैश्वीकरण के नारे के तहत कल्याणकारी राज्य ध्वस्त करने की ओर बढ़ गया।

साम्राज्यवादी-पूंजीवादी देश जहां अपनी विदेश नीति के तहत दूसरे देशों के साथ गैरबराबरीपूर्ण सम्बन्ध कायम करते हैं। हर देश अपने से कमजोर देश का शोषण, उसके संसाधनों की लूट में लगा रहता है, वहीं समाजवादी देश बाकी देशों से बराबरी के सम्बन्ध शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सम्बन्ध कायम करने की कोशिश करता है।

साम्राज्यवादी देश जहां हमेशा गरीब मुल्कों के साथ शोषणकारी, किसी न किसी तरह के औपनिवेशिक सम्बन्ध कायम करना चाहते हैं। वे इसके लिए आर्थिक- कूटनीतिक-सामरिक उपायों का हर सम्भव प्रयोग करते हैं। देशों की सम्प्रभुता-स्वतंत्रता को उनकी पूंजी, उनके हथियार हमेशा कुचलने में लगे रहते हैं। वहीं समाजवादी देश हमेशा दूसरे देशों की सम्प्रभुता का सम्मान करता है। यहां तक कि दूसरे देशों द्वारा थोपे गये युद्ध में विजयी होने पर भी वह उनके इलाकों को कब्जाने का तब तक कोई प्रयास नहीं करता जब तक समाजवाद की रक्षा के लिए ऐसा करना मजबूरी न हो जाय। सोवियत संघ का समूचा समाजवादी काल इस बात को दिखलाता है कि उसने किसी देश को हड़पने की कोशिश नहीं की।

जब आत्मनिर्णय के अधिकार के साथ विभिन्न राष्ट्रों के संघ के रूप में सोवियत संघ को संगठित किया गया तब भी राष्ट्रों के बीच परस्पर बराबरी व सहयोग के सम्बन्ध थे उनके भीतर किसी तरह के शोषणकारी सम्बन्ध नहीं थे। पूंजीवाद के तहत देशों के भीतर मौजूद राष्ट्रीयतायें हमेशा ही गैरबराबरीपूर्ण सम्बन्धों में बंधी रहती हैं और कुछ राष्ट्रीयतायें निरंतर उत्पीड़ित बनी रहती हैं।

पूंजीवादी दृष्टिकोण के बुद्धिजीवी सोवियत संघ के तहत राष्ट्रों के सम्बन्ध को भी पूंजीवादी देशों के बीच राष्ट्रों के सम्बन्ध के नजरिये से देखते रहे हैं। वे आरोप लगाते रहे हैं कि रूसी राष्ट्रीयता बाकी राष्ट्रीयताओं का शोषण करती है। पर राष्ट्रीयताओं को प्राप्त आत्मनिर्णय के अधिकार, जिसके तहत अलग होने का अधिकार भी शामिल है की मौजूदगी के बावजूद राष्ट्रों का सोवियत संघ में बने रहना ही यह दिखलाने को पर्याप्त है कि यह आरोप गलत है। जनवाद के सारे ढिंढोरे के बावजूद पूंजीवादी-साम्राज्यवादी देश अपने भीतर की राष्ट्रीयताओं को कभी यह अधिकार देने को तैयार नहीं होते।

C. समाजवाद आर्थिक संकटों से मुक्त रहता है

पूंजीवादी समाज में अपने अन्तर्निहित अन्तरविरोधों के तहत बारम्बार आर्थिक संकट आते रहते हैं जो उत्पादक शक्तियों की बड़े पैमाने पर तबाही पैदा करते हैं। वहीं समाजवादी समाज आर्थिक संकटों से मुक्त रहता है। 1929 की विश्वव्यापी मंदी के वक्त एक साथ मौजूद इन दो दुनियाओं को बोल्शेविक पार्टी का इतिहास पुस्तक में इन शब्दों में वर्णित किया गया है।

> "सोवियत संघ में देश के समाजवादी औद्योगीकरण में महत्वपूर्ण प्रगति हुई थी और उद्योग-धंधे तेजी से आगे बढ़ रहे थे। उधर पूंजीवादी देशों पर 1929 के अंत में एक अभूतपूर्व पैमाने पर सत्यानाशी विश्व आर्थिक संकट फूट पड़ा और अगले तीन वर्षों में बराबर तीव्र होता गया। उद्योग धंधों का संकट खेती के संकट के साथ मिला हुआ था, जिससे कि पूंजीवादी देशों की हालत और भी खराब हो गयी।
>
> "1930-33 में आर्थिक संकट के इन तीन वर्षों में, अमेरिका की औद्योगिक पैदावार घटकर 65 फीसदी रह गयी; ब्रिटेन की 86 फीसदी, जर्मनी की 66 फीसदी और फ्रांस की 77 फीसदी रह गयी। पैदावार की यह फीसदी घटती 1929 की तुलना में थी। लेकिन, इसी बीच सोवियत संघ की औद्योगिक पैदावार दुगुनी से ज्यादा हो गयी। और 1929 से 1933 में 201 फीसदी बढ़ गयी। समाजवादी आर्थिक व्यवस्था पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था से श्रेष्ठ है, उसका यह एक और सबूत था। इससे पता लगता था कि संसार में समाजवाद का देश ही ऐसा देश है जो आर्थिक संकटों से मुक्त है।
>
> "विश्व आर्थिक संकट ने 2 करोड़ 40 लाख बेकारों को भुखमरी, गरीबी और तबाही का शिकार बना दिया। खेती के संकट से लाखों किसान मुसीबत में पड़ गये।" (सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास, पृष्ठ 361, कामगार प्रकाशन, दिल्ली)

महामंदी के वक्त जब पूंजीवादी-साम्राज्यवादी देशों की अर्थव्यवस्थायें गोते लगा रही थीं तब समाजवादी सोवियत संघ तेजी से प्रगति कर रहा था। समाजवादी समाज के आर्थिक संकटों से मुक्त रहने के कारणों को राजनैतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त, खण्ड-दो में इन शब्दों में प्रस्तुत किया गया है।

> "पूंजीवादी समाज में सामाजिक उत्पादन अत्यन्त विकसित रूप में होता है। लेकिन पूंजीवाद की स्थितियों में, पूरे समाज में नियोजित ढंग से सामाजिक श्रम का आवण्टन करना असम्भव होता है। पूंजीवादी उत्पादन का लक्ष्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं बल्कि मुनाफा कमाने के लिए मूल्य का विस्तार करना होता है। ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए पूंजीपतियों के बीच जीवन-मरण के संघर्ष छिड़ जाते हैं। गन्दगी के पीछे भागती मक्खियों की तरह पूंजीपति बाजार दामों की स्वतःस्फूर्त गतियों के अनुसार अपनी पूंजी इधर-उधर खिसकाता रहता है। कभी वह एक सेक्टर में माल उत्पादन का विस्तार करता है तो कभी उसे रोककर दूसरे सेक्टर में पूंजी लगाता है। इन स्थितियों में उत्पादन की विभिन्न शाखाओं के बीच आवश्यक आनुपातिक सम्बन्ध

कायम नहीं रह पाते। लेनिन का यह कथन इस स्थिति का सटीक वर्णन है कि "पूंजीवाद में एक स्थायी रूप से गड़बड़ाये हुए अनुपात को कायम रखने के लिए संकट जरूरी है।"

"पूंजीवाद को हराकर समाजवाद के आने के साथ ही आर्थिक स्थितियां मूलभूत रूप से बदल जाती हैं। समाजवादी उत्पादन, उत्पादन के साधनों के सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली पर आधारित होता है और इसका लक्ष्य समाजवादी राज्य तथा समग्र जनता की आवश्यकताओं को पूरा करना होता है। एक ओर, समाजवादी व्यवस्था में सामाजिक उत्पादन का और विकास होता है। सामाजिक श्रम का उचित अनुपातों में आवण्टन और उत्पादन की विभिन्न शाखाओं के बीच उचित सन्तुलन बनाये रखना और भी अधिक आवश्यक होता है। दूसरी ओर, उत्पादन के साधनों के सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली मेहनतकश जनता को उत्पादन के स्वामियों में बदल देती है। उनके बुनियादी हित एक समान होते हैं। यह विभिन्न शाखाओं और उद्यमों के बीच हितों के टकराव को समाप्त कर देता है, जो कि पूंजीवाद में अन्तर्निहित होता है। इस प्रकार, सर्वहारा वर्ग और समस्त मेहनतकश जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाला समाजवादी राज्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न सेक्टरों के बीच श्रमशक्ति और उत्पादन के साधनों का आवण्टन राज्य तथा जनता की जरूरतों के अनुसार बनी एक एकीकृत योजना के तहत कर सकता है। यह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न सेक्टरों को सन्तुलित और समानुपातिक ढंग से विकास करने का मौका देता है। समाजवादी उत्पादन की यह आधारभूत आर्थिक स्थितियां इस ऐतिहासिक अवस्था से प्रतिस्पर्धा के नियम और उत्पादन के नियोजित विकास के नियम को जन्म देती है, जो सामाजिक उत्पादन और समस्त राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को विनियमित करता है। पूंजीवाद को हटाकर समाजवाद की स्थापना के परिणामस्वरूप होने वाले इन अपरिहार्य परिवर्तनों को एंगेल्स ने वैज्ञानिक दृष्टि से पहले ही देख लिया था। उन्होंने कहा था "उत्पादन के साधनों पर समाज का कब्जा माल उत्पादन को, और इसी के साथ उत्पादक पर उत्पाद के प्रभुत्व को समाप्त कर देता है। सामाजिक उत्पादन में व्याप्त अराजकता का स्थान सचेतन रूप से नियोजित संगठन ले लेता है।"

पूंजीवाद की प्रतिस्पर्धा और उत्पादन की अराजकता की जगह समाजवाद में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में नियोजित विकास होता है। समाजवादी नियोजन जनता द्वारा सचेतन अपना इतिहास बनाने की शुरुआत होती है। पूंजीवाद में प्रतिस्पर्धा व उत्पादन की अराजकता की स्थितियों में चीजें लोगों पर शासन करती हैं न कि लोग चीजों पर। पूंजीवाद में पूंजीपति खुद की तकदीर को उन वस्तुगत आर्थिक नियमों की अंधी गति से मुक्त नहीं कर सकते जो उसकी पीठ पीछे अपना काम करते रहते हैं। समाजवाद में सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली के तहत मेहनतकश लोग समाज के नये स्वामी बन खुद की तकदीर अपने हाथों में ले लेते हैं। वे वस्तुगत नियमों का सचेतन प्रयोग कर खुद अपने इतिहास का निर्माण करते हैं।

लेकिन ऐसा नहीं है कि समाजवादी नियोजित अर्थव्यवस्था में इस बात की हमेशा के लिए गारण्टी हो जाय कि उत्पादन के विभिन्न सेक्टरों के बीच आनुपातिक सम्बन्ध हमेशा पूर्ण सन्तुलन की स्थिति में बने रहेंगे। खासकर बुर्जुआ-संशोधनवादी बाधाओं की मौजूदगी के साथ-साथ विभिन्न सेक्टरों-उद्यमों-क्षेत्रों के बीच उन्नत और पिछड़े के अन्तर के चलते, प्राकृतिक दशाओं में बदलाव के कारण व वस्तुगत चीजों की लोगों की समझ की सीमाओं के कारण नियमित रूप से ऐसी स्थितियां उत्पन्न होती रहेंगी कि जब सन्तुलन और आनुपातिक सम्बन्ध बिगड़ जायेंगे। लेकिन समाजवादी समाज में विभिन्न सेक्टरों के इस असन्तुलन को जनता की सचेतन गतिविधियों व समाजवादी राजकीय योजना द्वारा विनियमन के जरिये लगातार दूर किया जा सकता है। इस तरह पूंजीवादी संकटों के वक्त उत्पादक शक्तियों की भारी बर्बादी से समाजवादी समाज बच जाता है और वहां तीव्र विकास करना सम्भव हो जाता है।

पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों के लिए समाज में किसी वस्तु की कुल मांग, उसका मूल्य व विभिन्न सेक्टरों में संतुलन स्थापित करने का जरिया बाजार होता है। इसीलिए जब सोवियत समाजवाद में इन सबको जनता की जरूरतों के अनुरूप नियोजित करने के प्रयास शुरु हुए तो पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों ने घोषित कर दिया कि कुल मांग व विविध सेक्टरों के बीच संतुलन केवल बाजार द्वारा ही स्थापित हो सकता है, कि समाजवादी सोवियत संघ में जो भी गणनायें की जा रही हैं वे सही ढंग से नहीं की जा सकतीं और भारी तबाही बर्बादी पैदा करेंगी। सोवियत समाजवाद में जब एकाध बार सेक्टरों के बीच का संतुलन गड़बड़ाया व कुछ चीजों की बर्बादी हुई तो इन बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों का समाजवाद विरोधी हमला और तेज हो गया। पर शीघ्र ही समाजवादी योजनाओं के जरिये गड़बड़ाते संतुलन को नियंत्रित कर लिया गया और समाजवादी सोवियत संघ तेज गति से आगे बढ़ गया। उसके कुछ वर्षों के प्रभावशाली विकास ने बाजार के पुजारियों की बोलती बंद कर दी। यहां तक कि कई पूंजीवादी देश भी सोवियत समाजवाद की तर्ज पर अपने यहां योजना का तत्व बढ़ाने में जुट गये।

स्पष्ट है कि समाजवादी समाज में नियोजन के जरिये आर्थिक संकटों के आने की पूंजीवादी बीमारी को पूर्णतः दूर कर दिया गया।

d. समाजवाद और फासीवाद

बुर्जुआ बुद्धिजीवी, स्कूली पाठ्य पुस्तकें अक्सर ही हिटलर और स्टालिन को एक श्रेणी में खड़ा करते हुए यह बताने का प्रयास करते हैं कि समाजवाद और फासीवाद एक सरीखी ही तानाशाही पूर्ण व्यवस्था है कि दोनों जनवाद विरोधी और निर्दोषों के रक्तपात से भरी होती हैं।

बुर्जुआ प्रचारकों की इन बातों के उलट वास्तविकता यह है कि फासीवाद बुर्जुआ वर्ग के ही शासन का सबसे निरंकुश, सबसे अधिक जनवाद विरोधी रूप है जिसे बुर्जुआ वर्ग संकट की अवस्था में, समाजवादी क्रांति होने के खतरे की अवस्था में अपनाने की ओर बढ़ता है। वह जनवाद की कंटी-छंटी चादर भी अपने शरीर से उतार फेंकता है और नग्न तानाशाही कायम करता है। चूंकि पूंजीवाद में संकट बारम्बार आने अपरिहार्य हैं और मजदूर क्रांति होने का खतरा कभी भी बढ़ सकता है इसलिए जब तक पूंजीवाद-साम्राज्यवाद मौजूद है, फासीवाद आने की संभावना तब तक बनी रहेगी। इन अर्थों में फासीवाद पूंजीवाद की ही नृशंसता-क्रूरता को ही नग्न रूप में सामने लाने का काम करता है।

इसके उलट समाजवादी व्यवस्था चूंकि आर्थिक संकटों से मुक्त रहती है, वहां जनता की ओर से नहीं शोषक पूंजीपतियों की ओर से पुनर्स्थापना का खतरा मौजूद रहता है इसलिए वहां शासन के फासीवादी रूप की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। हां, बुर्जुआ वर्ग जिस हद तक तोड़-फोड़ से लेकर बाकी हथकंडे अपना समाजवाद को नुकसान पहुंचाने का प्रयास करता है, उस हद तक उसे कुचलने के लिए सर्वहारा तानाशाही के तहत उसके जनवाद को कुचला जाता है। पर बाकी सभी मेहनतकश समुदाय के लिए महत्तम जनवाद समाजवाद में मौजूद होता है।

इस तरह फासीवाद जहां पूंजीवादी शासन का एक घोर जनवाद विरोधी रूप है वहीं समाजवाद महत्तम जनवाद की व्यवस्था है। इस मामले में दोनों एक-दूसरे के एकदम विपरीत छोर पर खड़ी व्यवस्थायें हैं। उनका यह विरोध हिटलर के कम्युनिज्म विरोध में स्पष्टतया दिखाई भी देता है।

समाजवादी सोवियत संघ ने दूसरे विश्व युद्ध के दौरान फासीवाद को कुचलने के लिए भारी कुर्बानी दी। जर्मनी के खिलाफ युद्ध में सोवियत संघ के 2 करोड़ लोग मारे गये। सर्वहारा नेता स्तालिन के नेतृत्व में अगर उस वक्त हिटलर को कुचला न गया होता तो आज दुनिया का इतिहास कुछ और ही होता। हिटलर और स्तालिन को अगल-बगल में बैठाने वाले उदारवादी बुर्जुआ के नेता उस समय हाथ पर हाथ धरे बैठे हुए थे। अमेरिका, ब्रिटेन के पूंजीवादी शासक इस उम्मीद को लगाये हुए थे कि फासीवाद व समाजवाद एक-दूसरे को युद्ध में तबाह कर दें ताकि वे दोनों की जगह अपना शासन कायम कर लेंगे। पर सोवियत जनता के बहादुराना संघर्ष ने उनकी इस मनोकामना को पूरा न होने दिया। उन्होंने फासीवादी हिटलर को पटखनी दे दी।

अक्सर ही बुर्जुआ वर्ग स्तालिन काल में 1936-38 के शुद्धि अभियानों में बड़े पैमाने पर पूंजीवादी तत्वों को सजा दिये जाने के कृत्य की तुलना हिटलर के कत्लेआम से करता है। जहां तक 36-38 के शुद्धि अभियान का प्रश्न है तो निश्चय ही उसमें कुछ ज्यादतियां हुई पर अगर सोवियत समाजवाद ने अपने भीतर पनप रहे पूंजीवादी तत्वों, हिटलर के पांचवें कालम के तत्वों का सफाया न किया होता तो समाजवादी सोवियत संघ हिटलर की सेनाओं के आगे फ्रांस की तरह ही धराशायी हो जाता। ऐसे में 1936-38 का अभियान न तो स्तालिन की सनक का परिणाम था न ही उसकी हिटलर के कत्लेआम की क्रूरता से कोई तुलना ही की जा सकती है। यह अभियान समाजवाद की रक्षा के लिए अपने देश में पनप रहे पूंजीवादी तत्वों व हिटलर के एजेंटों के खिलाफ चलाया गया। और सर्वहारा वर्ग स्तालिन के नेतृत्व में पूरी दृढ़ता के साथ चलाये इस अभियान को समाजवाद की रक्षा के अभियान के तौर पर देखता है और स्तालिन के महान नेतृत्व को इसके लिए याद करता है।

e. समाजवाद और युद्ध

पूंजीवाद में पूंजीपति वर्ग और पूंजीवादी राष्ट्रों के बीच हमेशा प्रतिस्पर्धा मौजूद रहती है यह प्रतिस्पर्धा ही पूंजीवाद को उसकी पैदाइश के वक्त से लेकर आज तक युद्धों में उलझाये रखती है। साम्राज्यवादी दौर में तो यह झगड़ा विश्व युद्धों को भी पैदा कर देता है। जब तक पूंजीवाद-साम्राज्यवाद मौजूद हैं तब तक यह प्रतिस्पर्धा मौजूद रहेगी व युद्धों-विश्व युद्धों को पैदा करती रहेगी। इसी के साथ युद्ध की तैयारी, नियमित सेना, हथियारों की होड़ को भी यह बनाये रखेगी।

पूंजीवाद के उलट समाजवाद के तहत चूंकि मजदूर वर्ग के हित वैश्विक पैमाने पर एक होते हैं। उसके भीतर कोई दुश्मनाना अन्तरविरोध नहीं होता। इसीलिए दो समाजवादी देश एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा में नहीं बल्कि परस्पर सहयोग में जीते हैं। इसीलिए समाजवाद की अपनी गति किन्हीं युद्धों की ओर नहीं बढ़ाती। इसीलिए समाजवादी देश को अगर बाहरी पूंजीवादी देशों, उनके एजेण्टों का खतरा न हो तो एक स्थिति के बाद वह अपनी नियमित सेना को समाप्त या कम कर सकता है। हथियारों के भण्डार खत्म कर सकता है। ऐसी स्थिति में समाजवाद को अपने भीतर उत्पन्न होने वाले पूंजीवादी तत्वों पर ही लगाम लगाने की आवश्यकता होगी। जिसे बगैर बड़ी फौज या हथियारों के जखीरे के भी सर्वहारा तानाशाही की व्यवस्था आसानी से कर लेगी।

परन्तु न तो सोवियत समाजवाद को और न ही समाजवादी चीन को ऐसी मनवांछित विकास की परिस्थिति हासिल हुई। पूंजीवादी-साम्राज्यवादी देशों की बहुलता की स्थिति में ऐसी परिस्थितियां मिल भी नहीं सकती थीं। पूंजीवादी-साम्राज्यवादी देश अक्टूबर क्रांति के बाद से 1956 में पूंजीवादी पुनर्स्थापना तक लगातार सोवियत समाजवाद को तबाह-बर्बाद करने के षड्यंत्र करते रहे। क्रांति के तुरंत बाद कई देशों के एक साथ हमले के साथ रूस को गृहयुद्ध की विभीषिका झेलनी पड़ी। इसके बाद भी लगातार साम्राज्यवादी देश 1920 के दशक में तोड़फोड़ से लेकर युद्ध की धमकी देते रहे। 30 के दशक में तो जर्मनी की ओर से हमले की पूरी तैयारी ही होने लगी। 41-43 जर्मनी से युद्ध में भारी कुर्बानी के साथ हासिल जीत के बाद अमेरिकी साम्राज्यवाद की ओर से युद्ध का खतरा बन गया।

इन सब वजहों से सोवियत समाजवाद को लगातार न केवल मजबूत लाल सेना बनाये रखनी पड़ी बल्कि 30 के दशक में युद्ध की तैयारी व हथियार उत्पादन में भारी संसाधन झोंकने पड़े। दूसरे विश्व युद्ध के बाद अमेरिका द्वारा युद्ध की धमकी के मद्देनजर आणविक हथियार विकसित करने पड़े।

दरअसल अपनी युद्ध की सतत तैयारी के बावजूद सोवियत समाजवाद हमेशा युद्ध टालने व शान्ति के लिए प्रयासरत रहा। क्रांति के तत्काल बाद उसने पहले विश्व युद्ध से खुद को अलग कर लिया। इसके लिए जर्मनी से ब्रेस्त-लितोवस्क जैसी अपमानजनक शर्तों की संधि तक कर ली। 20-30 के दशक में साम्राज्यवादी उकसावे व हमले की आशंका के खिलाफ उसने कूटनीतिक प्रयासों से लेकर कोमिन्टर्न के मंच से मजदूर वर्ग के राज्य पर हमले के विरोध के अभियान संगठित किये। 30 के दशक में राष्ट्र संघ में शामिल हो व अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस को फासीवाद विरोधी मोर्चे का प्रस्ताव दे उसने युद्ध को टालने का प्रयास किया। पर साम्राज्यवादी अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस के समर्थन न देने से यह मोर्चा न बन सका। अन्ततः 1939 में उसने जर्मनी से अनाक्रमण संधि कर अपने लिए युद्ध की तैयारी का वक्त हासिल किया। इस दौरान स्पेन के गृहयुद्ध में उसने इसी के मद्देनजर हस्तक्षेप नहीं किया कि यह जर्मनी से युद्ध की शुरुआत हो सकती थी। दूसरे विश्व युद्ध के बाद भी उसने ग्रीस के गृहयुद्ध में अमेरिकी उकसावे के बावजूद हस्तक्षेप नहीं किया। इस तरह सोवियत समाजवाद ने कभी अपनी ओर से युद्ध नहीं छेड़ा। उस पर साम्राज्यवादियों की ओर से युद्ध थोप दिये गये।

साम्राज्यवादियों के खिलाफ गुलाम मुल्कों के मुक्ति युद्धों का सोवियत समाजवाद के लिए व साम्राज्यवाद से मुक्ति के हर युद्ध का सोवियत समाजवाद ने समर्थन-सहयोग किया। हर न्यायपूर्ण युद्ध का वह सबसे मजबूत सहयोगी था जबकि अन्यायपूर्ण युद्ध का दृढ़ विरोधी।

इस तरह पूंजीवाद के रक्तपात-युद्धों से भरे इतिहास के उलट समाजवाद ने 20वीं सदी में साम्राज्यवाद को गरीब मुल्कों पर हमले से रोका। हां, न्यायपूर्ण युद्धों को उसने हमेशा समर्थन दिया। चूंकि न्यायपूर्ण युद्ध विश्व शांति के दुश्मन साम्राज्यवाद को कमजोर करते हैं अतः यह समर्थन भी स्थायी शांति की दिशा में ही लक्षित था।

f. समाजवाद और पर्यावरण

पूंजीवाद द्वारा पर्यावरण को लगातार नष्ट किये जाने की प्रवृत्ति का पहले हिस्से में वर्णन किया जा चुका है। मुनाफे व परस्पर प्रतिस्पर्धा के चलते साम्राज्यवादी अपने देश के पर्यावरण को चौपट करते हैं साथ ही पूरी दुनिया के पर्यावरण को भी खतरे में डाल देते हैं। वे गांवों को तबाह कर शहरों में आबादी का संकेन्द्रण बढ़ाते जाते हैं।

पूंजीवाद के अराजक उत्पादन के उलट समाजवाद में चूंकि नियोजित योजनाबद्ध उत्पादन होता है इसलिए उत्पादन के परिणामस्वरूप पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का पहले से आंकलन कर उसकी भरपाई की योजना बना पर्यावरण संतुलन बनाये रखा जाता है। उत्पादक इकाईयां, उद्योग आदि लगाते वक्त मुनाफे की जगह इंसान को केन्द्र में रखने के चलते पर्यावरण सुरक्षा को भी ध्यान में रखा जाता है।

इसी तरह युद्ध व हथियारों की होड़ रोक कर भी इस ओर से पर्यावरण के खतरे को कम किया जा सकता है। पूंजीवाद में मनुष्य प्राकृतिक वातावरण को तहस-नहस करने की प्रक्रिया में उसके विरोध में खड़ा हो जाता है। समाजवाद में मनुष्य प्रकृति के साथ सामंजस्य में विकास करता है।

इसलिए आज के पर्यावरण संकट का हल भी पूंजीवाद को समाप्त कर समाजवादी निर्माण में ही है। यह समाजवादी व्यवस्था की पूंजीवाद पर श्रेष्ठता का एक अन्य लक्षण है।

अन्त में

पूंजीवादी विकास की पिछली 5 सदियों की विकास प्रक्रिया की सकारात्मक बात केवल यही है कि इस दौरान यह लगातार उत्पादन का स्वरूप अधिकाधिक सामाजिक करता जाता है। इस तरह वह कम्युनिज्म के निर्माण के लिए लगातार आर्थिक आधार अधिक मुकम्मल करता जाता है। इसी में पूंजीवाद की समस्त प्रगतिशीलता निहित है।

इस एक बात को छोड़ दिया जाये तो पूंजीवाद की 5 सदियों ने मानवता को एक से बढ़कर एक कष्ट अपनी विकास प्रक्रिया में दिये हैं। आदिम पूंजी संचय से लेकर आधुनिक साम्राज्यवादी युग तक उसने युद्धों, बेकारी, भुखमरी, पर्यावरण प्रदूषण, फासीवाद आदि के जरिये अनगिनत मेहनतकशों को बदहाली कंगाली के साथ-साथ मौत के मुंह में ढकेला है। उसका हथियार उद्योग आज ऐसे-ऐसे हथियार बना चुका है कि धरती को कई बार नष्ट किया जा सकता है। पर्यावरण संकट इतनी तबाही की ओर बढ़ता जा रहा है कि वह धरती पर मानव के अस्तित्व के लिए ही खतरा बन चुका है।

पूंजीवाद की इस तबाही के उलट समाजवाद ने 20वीं सदी में दुनिया को मानवता के खुशहाल भविष्य की झलक दिखला दी। समाजवादी विकास ने हर क्षेत्र में पूंजीवादी विकास पर न केवल अपनी श्रेष्ठता स्थापित की बल्कि यह भी पुष्ट कर दिया कि समाजवाद और कम्युनिज्म ही मानवता को पूंजीवाद की 5 सदियों की सतत् तबाही-बर्बादी-विनाश से मुक्ति दिला सकता है।

पूंजीवादी बुद्धिजीवी समाजवाद को उसकी पैदाइश के वक्त से ही कोसने में जुटे हैं। बुर्जुआ वर्ग समाजवाद को अन्दर-बाहर दोनों से कमजोर करने में जुटा रहा। 1976 में चीन में पूंजीवादी पुनर्स्थापना के बाद बुर्जुआ बुद्धिजीवी समाजवाद को असफल प्रोजेक्ट के बतौर प्रचारित करने लगे तो कुछ पूंजीवाद के साथ इतिहास के अंत की परिकल्पना पेश करने लगे। कुछ ने उत्तर आधुनिकतावादी लबादे मे वर्ग संघर्ष के बजाय अलग-अलग पहचानों के संघर्ष का नारा दे समाजवाद को खारिज करने का प्रयास किया। समाजवाद में जनवाद न होने का ढिंढोरा तो काफी लम्बे समय से वे पीटते रहे हैं।

बुर्जुआ बुद्धिजीवियों के इस हमले का असर तात्कालिक तौर पर क्रांतिकारी पांतों में भी पड़ा है। इसके साथ ही बदले रूपों में यही बातें संशोधनवाद की ओर से उठती रही हैं जिनका सारतत्व एक ही है कि क्रांति व कम्युनिज्म का त्याग।

पर बुर्जुआ वर्ग अपने बुद्धिजीवियों के समस्त प्रचार पर खुद ही यकीन नहीं करता है वह मजदूर वर्ग और उसकी क्रांति को वास्तविक खतरा मानते हुए उसे कुचलने के लिए कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखता। कभी मार्क्स ने कम्युनिज्म का भूत के समूचे यूरोप के शासकों को सताने की बात कही थी। आज यह भूत पूरी दुनिया के शासकों को सता रहा है।

2007-08 से जारी विश्व आर्थिक संकट के हल का कोई रास्ता न निकलते देख अब हताश हो कई पूंजीवादी अर्थशास्त्री धीमी विकास दर को ही आगे के पूंजीवादी विकास की आम प्रवृत्ति घोषित कर दे रहे हैं। यह संकट और इसके दौरान पैदा हुई तबाही-बर्बादी बार-बार संकट के स्थायी हल की ओर अर्थात पूंजीवाद के नाश व समाजवाद की स्थापना की ओर बढ़ने की मांग कर रही है।

पूंजीवादी बुद्धिजीवियों की बकवास व बुर्जुआ वर्ग के समूचे प्रयास इतिहास की गति को रोक नहीं सकते। समाजवाद व कम्युनिज्म न केवल पूंजीवाद से हर मायने में बेहतर व्यवस्था है बल्कि वह इतिहास सम्मत भी है।

■■■